Chapter-2

द्वितीय अध्याय

कथावस्तु के परिप्रेक्ष्य में डॉ. भगवतीशरण मिश्र के उपन्यासों की भाषा

प्रास्ताविक

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का विषय डॉ. भगवतीशरण मिश्र के उपन्यासों की भाषा से सम्बद्ध है। यह तो अनेक बार कहा गया है कि उपन्यास गद्य की विधा है,और गद्य के प्रचार-प्रसार के साथ ही उपन्यास विधा का आर्विर्भाव और विकास हुआ है। उपन्यास की प्रारंभिक परिभाषाओं ने उसे प्रकथनात्मक गद्य की विधा बताया गया था, किन्तु राल्फ फॉक्स महोदय ने यह कहते हुए कि उपन्यास केवल प्रकथनात्मक गद्य मात्र नहीं है, वह मानव-जीवन का गद्य है, उपन्यास के गद्य को सीधे मानव जीवन से सम्बद्ध कर दिया। अभिप्राय यह कि उपन्यास में प्रयुक्त भाषा उसके परिवेशगत पात्रों की भाषा होगी । यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि उपन्यास में भाषा के दो स्तर पाए जाते हैं - एक तो लेखकीय भाषा और दूसरे परिवेशगत पात्रों की भाषा। परिवेश में देश और काल अर्थात् स्थान और समय, अर्थात् भूगोल और इतिहास के सन्दर्भ में रहते हैं। किसी भी कथाकृति की भाषा पर विचार करते हुए हम उक्त आयामों को नजरअंदाज नहीं कर सकते । हमारे यहाँ चार कोश पर पानी और बारह कोश पर बानी के बदलने की बात कही गई है, वह एक भाषा - वैज्ञानिक सत्य है। व्यक्ति जिस स्थाान से सम्बद्ध होता है, उस स्थान की भाषा का प्रयोग उसमें अवश्य मिलता है। ठीक उसी प्रकार व्यक्ति की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, उसके सामाजिक सरोकार भी उसकी भाषा को प्रभावित करते हैं। व्यक्ति की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, व्यावसायिक स्थिति भी उसकी भाषा को प्रभावित करती हैं। एक सामान्य नागरिक, राजा, अमात्य, आचार्य, सिपाही, अध्यापक, वकील, पण्डित, पुजारी आदि व्यक्तियों में उनकी भाषा स्थिति-सापेक्ष होती है। अतः उपन्यास की भाषा पर विचार करते हुए इन कारकों पर पर्याप्त मात्रा में ध्यान देना होगा। एक आंचलिक उपन्यास की भाषा, एक समसामयिक विषय पर आधारित सामाजिक उपन्यास की भाषा, एक ऐतिहासिक उपन्यास की भाषा और एक पौराणिक उपन्यास की भाषा में असंदिग्धतया भाषिक संरचना के स्तर पर परिवर्तन उपलब्ध होगा। अतः डॉ. भगवतीशरण मिश्र के उपन्यासों की भाषा पर विचार करने के उपक्रम में हमें उनके उपन्यासों की विषयवस्तु पर भी विचार करना होगा।

डॉ. भगवतीशरण मिश्र के उपन्यासों का वर्गीकरण

पूर्ववर्ती पृष्ठों में निर्दिष्ट किया गया है कि उपन्यास के रूपबन्ध के अनुसार उसकी भाषा में यत्किंचित परिवर्तन परिलक्षित होता है। मिश्रजी बहुपठित एवं

बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न लेखक हैं, अतः उनके उपन्यासों के रूपबन्ध में भी विविधता दृष्टिगोचर होती हैं। डॉ. भगवतीशरण मिश्र के जो उपन्यास अद्यावधि प्रकाशित हुए हैं, उनको हम निम्नलिखित चार वर्गों में प्रस्तुत कर सकते हैं:

(01) सामाजिक उपन्यास

(02) ऐतिहासिक उपन्यास

(03) पौराणिक-सांस्कृतिक उपन्यास

(04) चमत्कारिक एवं आध्यात्मिक अनुभवों से युक्त उपन्यास।

मिश्रजी के सामाजिक उपन्यासों में 'नदी नहीं मुड़ती', 'एक और अहल्या', 'सूरज के आने तक' तथा 'लक्ष्मण-रेखा' प्रभृति उपन्यासों को परिगणित कर सकते हैं। 'नदी नहीं मुड़ती' में बिहार के मिथिला प्रदेश की एक प्रतिभा सम्पन्न किन्तु दरिद्र ब्राह्मण परिवार की कन्या-सुषमा के जीवन की महत्वाकांक्षाओं एवं आशा-निराशाओं को वहाँ के यथार्थ सामाजिक-राजनीतिक परिवेश में प्रस्तुत किया गया है। 'एक और अहल्या' उपन्यास भी नायिका-प्रधान उपन्यास है। उसकी नायिका पृथा है। प्रस्तुत उपन्यास में अनमेल विवाह की समस्या को एक दूसरे ढंग से व्याख्यायित किया गया है। 'सूरज के आने तक' उपन्यास में स्वातंत्र्योत्तर काल के ग्रामीण जीवन को उकेरा गया है। यहाँ स्वाधीनता के उपरांत ग्राम्य-कल्याण के लिए सरकार द्वारा जो नानाविध अभियान और कल्याण योजनाएँ नियोजित हुई उनका भी ब्यौरा दिया गया है। लेखक ने यहाँ धर्म के सकारात्मक पक्ष को उजागर करते हुए अपने अग्रगामी चिन्तन का परिचय दिया है। इन सब उपन्यासों में 'लक्ष्मण-रेखा' एक अलग प्रकार का उपन्यास है। पर्यावरण की समस्या को लेकर लिखा गया कदाचित् यह प्रथम उपन्यास है। शैलेश मटियानी कृत उपन्यास 'नागवल्लरी' में पर्यावरण से सम्बद्ध चिपको आन्दोलन की कुछ चर्चा उपलब्ध होती है। परन्तु यह चर्चा आनुषंगिक रूप में आई है। उपन्यास के केन्द्र में तो कुमाऊ प्रदेश के ग्रामीण जीवन की सामाजिक-राजनीतिक गतिविधियाँ ही प्रमुख रूप से उपलब्ध होती हैं किन्तु 'लक्ष्मण-रेखा' उपन्यास का तो मुख्य ही पर्यावरण है।

यह अनेक बार निर्दिष्ट किया जा चुका है कि डॉ. भगवतीशरण मिश्र एक बहुपठित एवं बहुश्रुत विद्वान हैं, अतः उनके औपन्यासिक लेखन में भी हमें प्रवृत्तिगत वैविध्य दृष्टिगोचर होता है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, उन्होंने कुछ ऐतिहासिक उपन्यासों का प्रणयन भी किया है। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में 'पहला सूरज', 'पीताम्बरा', 'देख कबीरा रोया', 'का के लागूं पांव', 'गोबिन्द गाथा', 'शान्तिदूत'

आदि है। 'पहला सूरज' उपन्यास महाराजा छत्रपति शिवाजी के जीवन-कवन को लेकर लिखा गया है। 'पीताम्बरा' उपन्यास में उन्होंने मध्यकाल की प्रेमदीवानी कवयित्री मीराबाई के चरित्र को आकलित किया है। 'का के लागूं पांव' सिक्खों के नौवें गुरु तेगबहादुर के जीवन-कवन तथा उनकी शहादत की कथा को लिया गया है। किन्तु इस उपन्यास में गुरु गोविन्द सिंह के जन्म और उनके शैशव से सम्बद्ध कथा को भी लिया गया है। इस प्रकार यह उपन्यास गुरु तेगबहादुर की संघर्षगाथा तथा गुरु गोविन्द सिंह के शैशव काल से जुड़ा हुआ है। 'गोबिन्द गाथा' में मिश्रजी ने सिक्खों के क्रान्तिकारी एवं वीर योद्धा गुरु गोविन्दसिंह को ओजस्वी एवं जुझारु व्यक्तित्व को शब्दबद्ध किया है। इस प्रकार 'गोबिन्द गाथा' को हम 'का के लागूं पांव' की अगली कड़ी कह सकते हैं। जिस प्रकार अमृतलाल नागर ने भक्तिकाल के दो महान कवि गोस्वामी तुलसीदास और कवि कुल चूडामणि पुष्टिमार्ग के जहाज सदृश सूरदासजी के जीवन-कवन पर क्रमशः 'मानस का हंस' और 'खंजन-नयन' नामक उपन्यासों का सृजन किया है, ठीक उसी प्रकार डॉ. मिश्र ने भी हिन्दी साहित्य के दिग्गज और मस्तमौला कवि कबीरदास पर 'देख कबीरा रोया' नामक उपन्यास का प्रणयन किया है। मिश्रजी के उपर्युक्त उपन्यास सुदूर अतीत से जुड़े हुए है। किन्तु उनका 'शान्तिदूत' उपन्यास निकट अतीत से जुड़ा हुआ है। उसमें लेखक ने महात्मा गाँधी तथा स्वाधीनता संग्राम से संलग्नित घटनाओं को उपन्यास का वस्तु बनाया है। कोई चाहे तो इसे राजनीतिक उपन्यास भी कह सकता है। ऐतिहासिक उपन्यास की रचना करना कोई सरल कार्य नहीं है। वह एक जटिल, पेचीदा एवं परिश्रम साध्य कार्य है। इसके लिए लेखक को शोध-अनुसंधान की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। इतिहास के नाना ग्रन्थों का दोहन कर के मूल सत्य को उदघाटित करने के लिए उपन्यासकार को नियमतः रिसर्च की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध उपन्यासकार Joyas cary ने इसका संकेत दिया है। यथा- "Mr. Cary explained that he was now ëploting the book. There was research yet to be done. Research, he explained was some - times a bore, but it was necessary for getting the political and social back-ground of his work right."[1] लेखक केरी इस प्रकार की शोध प्रक्रिया से न गुजरे तो उनके लेखन में देशकाल विरुद्ध दूषण के रह जाने की पूरी-पूरी संभावना रहती है। डॉ. मिश्र भी अपने इन ऐतिहासिक उपन्यासों के सृजन के पूर्व शोध-प्रक्रिया से गुजरे हैं उसकी प्रतीति हमें उनके इन उपन्यासों के अध्ययन-अनुशीलन से हो जाती है।उक्त उपन्यासों पर एक सरसरी नजर डालने से निश्चयपूर्वक यह बात प्रमाणित

और ज्ञापित होती है कि मिश्रजी ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में चरित नायक-नायिका के रूप में ऐसे देदीप्यमान नक्षत्र सदृश क्रान्तिकारी एवं विद्रोही प्रकार के व्यक्तियों का वर्णन किया है। यें कुछ ऐसे चरित्र हैं जिन्होंने किसी-न-किसी रूप में एक नए इतिहास का निर्माण किया है।

सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यासों के उपरांत मिश्रजी ने पौराणिक-सांस्कृतिक प्रकार के उपन्यास भी दिए हैं। उनके इस प्रकार के उपन्यासों में 'प्रथम पुरुष', 'पुरुषोत्तम' तथा 'पवनपुत्र' आदि हैं। 'प्रथम पुरुष' तथा 'पुरुषोत्तम' भारतीय संस्कृति के महानायक तथा कर्णधार भगवान श्रीकृष्ण के जीवन को लेकर प्रणीत हुए हैं। इन उपन्यासों में श्रीकृष्ण के जीवन-चरित्र को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि वे क्रमशः मनुष्यत्व से भगवतता की ओर संक्रमित हुए हैं। भारतीय वाङ्मय में कृष्ण का चरित्र एक अदभुत चरित्र हैं। हिन्दी में एक कहावत है जिन खोजा तिन पाइया यह कहावत कृष्ण के चरित्र पर पूर्णतया लागू की जा सकती है। यह एक ऐसा चरित्र हैं जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपने मनोनुरूप तथ्य उपलब्ध हो सकते हैं। किसी के लिए वह नटखट बालक है, तो किसी के लिए गोपीजन वल्लभ, किसी के लिए रसिक शिरोमणी, तो किसी के लिए दुर्द्धष योद्धा, किसी के लिए महान राजनीतिज्ञ ऐतिहासिक पुरुष तो किसी के लिए पूर्ण पुरुषोत्तम। कृष्ण चरित्र है कि पकड़ में ही नहीं आता। फलतः उन पर प्रबन्ध काव्यों की रचना कम मुक्तक काव्य, पद, भजनात्यादि की रचना ज्यादा हुई है।[2]

प्राचीनतम भारतीय साहित्य और शिल्प में श्रीकृष्ण की शृंगार-लीलाओं का वर्णन नहीं मिलता, इस विषय की विशद विवेचना करते हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीने लिखा है कि- "श्रीकृष्णावतार के दो मुख्य रूप हैं। एक में वे यदुकुल के श्रेष्ठ रत्न हैं, वीर हैं, राजा हैं, कंसारि हैं, दूसरे में वे गोपाल हैं, गोपीजन वल्लभ हैं, 'राधाधर - सुधापान - शालि - वनमालि' हैं। प्रथम रूप का पता बहुत पुराने ग्रन्थों से चल जाता है, पर दूसरा रूप अपेक्षाकृत नवीन है।[3] डॉ. मिश्र ने कृष्ण चरित्र के उभय रूपों को बड़े ही संयत एवं कलात्मक ढंग से उकेरा है। 'प्रथम पुरुष' में वे कंसारि हैं, तो 'पुरुषोत्तम' में वे सुदर्शन चक्रधारी और गीता के उद्घोषक हैं।"

'पवनपुत्र' उपन्यास में डॉ. मिश्र ने हनुमानजी के चरित्र को लिया है। शंकर भगवान और हनुमान हमारे यहाँ के दो ऐसे देवता हैं जिनको प्रायः हमारे देश के सभी प्रदेशों में तथा सभी जातियों में पूजा जाता हैं। अतः इन देवताओं को हम लोकदेवता भी कह सकते हैं। जहाँ दूसरे कई देवता छल-छद्म वाले बताए गए हैं वहाँ महादेव भोले शंकर के रूप में जन मानस में प्रतिष्ठित हैं। वे बहुत ही जल्दी

प्रसन्न हो जाते हैं। अतः उनको आशुतोष भी कहा जाता हैं। पति और पुत्र की कामना करने वाली कुमारियाँ तथा स्त्रियाँ महादेव की पूजा करती हैं और उनको अपना इष्ट देवता मानती हैं। हनुमान तो संकटमोचन माने ही गए हैं। सांसारिक आधि-व्याधि-उपाधि से बचने हेतु हनुमान चालीसा का पाठ किया जाता है। अतुल बल तथा अनेक चमत्कारपूर्ण शक्तियों के स्वामी होने के बावजूद पहले सुग्रीव तथा बाद में राम की सेवा में जीवन व्यतीत करने वाले पवनपुत्र हनुमान सभी लोगों में हमेशा-हमेशा के लिए वन्द्य रहे हैं। ''दूसरे देवताओं का जीवन कहीं न कहीं किसी न किसी प्रकार से कलुष युक्त रहा हैं। पर हनुमानजी का जीवन तथा चरित्र बेदाग रहा है। भारत वर्ष का कोई ऐसा गाँव नहीं होगा जहाँ हनुमान दादा की मूर्ति न पाई जाती हों। अतः पवनपुत्र हनुमान के जीवन पर आद्धृत मिश्रजी का यह उपन्यास उनकी लोकदृष्टि का ही परिचायक है।[4]

डॉ. भगवतीशरण मिश्र ने कतिपय चमत्कारपूर्ण एवं आध्यात्मिक प्रसंगो को लेकर प्रकीर्ण साहित्य की सृष्टि की है। इनमें 'बंधक आत्माएँ' एक पुस्तक है जिसे हम उसके कथातत्व के कारण उपन्यास कह सकते हैं। प्रेमचन्द पूर्व काल में चमत्कार, जादू-टोना, तन्त्र-मन्त्र प्रभृति को लेकर तिलस्मी प्रकार के उपन्यास लिखे जाते थे, आज भी लिखे जाते हैं। किन्तु उनकी गणना साहित्यिक या स्तरीय प्रकार के उपन्यासों में नहीं होती। हिन्दी के उपन्यास साहित्य के आलोचकों ने, केवल जैनेन्द्रजी को छोड़कर, एक स्वर से उपन्यास को यथार्थ की विधा करार दिया है। अतः उसमें चमत्कारपूर्ण घटनाओं को, रहस्यमय आध्यात्मिक घटनाओं को स्थान नहीं दिया जाता। किन्तु डॉ. मिश्रजी इसमें भी लीकपरस्ती को छोड़ कर अपना स्वतन्त्र एवं अलग मत अख्तियार किया है। बंधक आत्माएँ में मिश्रजी ने एक सिद्ध पुरुष के जीवन के कतिपय चमत्कारपूर्ण एवं आध्यात्मिक अनुभवों को चित्रित किया है। प्रस्तुत उपन्यास में निरूपित बातें कर्णोपकर्ण सुनी हुई बातें नहीं हैं, अपितु स्वयं मिश्रजी इन चमत्कारों एवं अनुभवों के प्रत्यक्षदर्शी साक्षी रहे हैं। इसके अतिरिक्त उपन्यास में उन्होंने अनेक गणमान्य, सामाजिक राजनीतिक जीवन में पड़े हुए, सम्मानित पदों पर विराजित ऐसे महानुभावों का हवाला दिया हैं। अतः उनकी बातों पर विश्वास करना पड़ता हैं। दूसरे उन्होंने कई ऐसी चमत्कारपूर्ण बातों के आधार भौतिकी विज्ञान के सिद्धान्त के अनुसार दिए हैं। वस्तुतः हम जिसे वैज्ञानिक सत्य कहते हैं, उसकी शक्ति औरे सीमा को हमें कहाँ तक आंकना चाहिए यह भी एक प्रश्न हैं। अभी संसार में बहुत कुछ ऐसा है, जो जाना नहीं गया है। अतः यदि किसी वस्तु का हमें ज्ञान नहीं है तो केवल इस आधार पर हम किसी वस्तु के अस्तित्व को नकार नहीं सकते।

टी.वी., वी.सी.आर., फेक्स, इ.मेल जैसी चीजे आज हकीकत का रूप ले रही है। आज से सौ-डेढसौ वर्ष पूर्व कोई ऐसी बातें करता तो उसकी बातों को कपोल कल्पित, चमत्कारपूर्ण, अवैज्ञानिक या मूर्खतापूर्ण करार दी जाती। आज का चमत्कार आने वाले युग का वैज्ञानिक तथ्य भी हो सकता है। इस सृष्टि से मिश्रजी के इस उपन्यास का महत्व एवं योगदान अपरिहार्य समझा जा सकता है।

(01) सामाजिक उपन्यास

जिन उपन्यासों में वस्तु, चरित्र, कथोपकथन, परिवेश आदि औपन्यासिक तत्वों की विनियोजना सामाजिक यथार्थ को केन्द्रस्थ रखते हुए होती हैं, उनको हम सामाजिक उपन्यास की संज्ञा दे सकते हैं। सामाजिक उपन्यासों में समाज के किसी देश-काल में अंतर्निहित प्राणप्रश्नों को उठाया जाता हैं। सामाजिक समस्याओं का निरूपण उनका प्रमुख उद्देश्य होता है। मिश्रजी के सामाजिक उपन्यासों में 'नदी नहीं मुड़ती', 'एक और अहल्या', 'सूरज के आने तक' तथा 'लक्ष्मण-रेखा' आदि को परिगणित किया जा सकता है। प्रस्तुत शोधप्रबन्ध में हमारा उद्देश्य डॉ. भगवतीशरण मिश्र के उपन्यासों का भाषागत अध्ययन है, अतः उनके उपन्यासों की वस्तुगत चेतना को तलाशना अहैतुक नहीं समझा जाएगा। अतः प्रस्तुत अध्याय में हमारा उपक्रम मिश्रजी के उपन्यासों के वस्तुगत एवं चरित्रगत संसार को दृष्टिगत करने का रहेगा।

नदी नहीं मुड़ती

नदी नहीं मुड़ती एक चरित्र प्रधान सामाजिक उपन्यास है। इस उपन्यास के वस्तुजगत के केन्द्र में उसकी नायिका सुषमा है। सुषमा एक सुशिक्षित एवं पढ़ी-लिखी युवती है। वह अत्यन्त मेधावी एवं प्रतिभा संपन्न है। साथ ही साथ वह अत्यन्त महत्वाकांक्षिणी है। महत्वाकांक्षा कोई दुर्गुण नहीं है, किन्तु यदि उसके साथ अभिमान और अहंकार जुड़ जाते हैं तो ऐसा व्यक्ति आकांक्षाओं के तीव्रगामी हरिकेन में भटक जाता है। प्रस्तुत उपन्यास में सुषमा मानो एक नदी का प्रतीक है, जो एक बार निकल पड़ती है तो मुड़ने का नाम ही नहीं लेती है।

उपन्यास में लेखक ने अधोमुखी कथाप्रवाह शैली को अंगीकृत किया है। उपन्यास की कथा का आरम्भ उसके आखिरी बिन्दु से होता है। सुषमा आबू के एक होटल बेलीव्यू में प्रोफेसर सागर चौधरी को मिलने आती है। वह अजमेर आई थी तो पता चला कि प्रोफेसर चौधरी आबू में कोई रिसर्च कर रहे हैं। अतः वह उन्हें मिलने

चली आती है और उनके सामने पुनः एक बार विवाह का प्रस्ताव रखती है। प्रोफेसर चौधरी सुषमा के प्रस्ताव को निर्मम कठोरता के साथ ठुकराते हुए कहते हैं - "मुझे लगता है व्यर्थ ही है तुम्हारा हाथ-पैर मारना। डूबते को तिनके का सहारा जरूर होता है, पर मैं समझता हूँ अब तो मैं तिनका भी नहीं रहा तुम्हारे लिए। पाँच वर्षों तक जिस तरह तुम घाट-घाट का पानी पीती रही, अब इस किनारे लगकर भी क्या करोगी?"[5] कथा के इस बिन्दु से स्मृतियों और पूर्वदीप्ति के सहारे सुषमा की कहानी उसके विगत जीवन की ओर मुड़ती है।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने उतरी बिहार के मिथिला जनपद के जीवन को चित्रित किया है। सुषमा एक गरीब ब्राह्मण की कन्या है। उसके पिता का निधन शैशवकाल में ही हो गया था। दो-तीन गायों को पालकर उसकी माँ उसे जैसे-तैसे पाल-पोसकर बड़ा करती है। सुषमा बहुत ही सुन्दर थी। उसका कण्ठ भी सुमधुर था। गाँव में कहीं भी कोई शुभ प्रसंग होता, सुषमा को गीतों के लिए बुलावा आता था। इस प्रकार सुषमा के सौन्दर्य और कोकिल कण्ठ की चर्चा पूरे ज्वार में परिव्याप्त थी। अतः एक दिन पण्डित गोकुल झा सुषमा का हाथ माँगने चले आते हैं।

पण्डित गोकुल झा श्रोत्रीय (कुलीन) ब्राह्मण थे सुषमा की माँ पहले तो प्रसन्न होती है कि कदाचित् पण्डितजी अपने बेटे का रिश्ता लेकर आए हैं परन्तु जब उसे ज्ञात होता है कि वे अपने रिश्ते की बात कर रहे हैं, तब वह आघात से जड़ीभूत हो जाती है। किन्तु सुषमा तो मारे क्रोध के आगबबुला हो जाती है और जूते मार-मारकर पण्डितजी को वहाँ से भगाती है।

यहाँ बिहार के जनजीवन का एक अभिशप्त पहलू प्रकट होता है। बिहार में कुलीन ब्राह्मण कई-कई विवाह करते हैं। कोई गरीब ब्राह्मण यदि अपनी बेटी के विवाह हेतु दान-दहेज नहीं जुटा पाता, तो वह उसकी शादी ऐसे कुलीन ब्राह्मणों से कर देते हैं। विवाह के उपरान्त लड़की ससुराल नहीं जाती। मयके में ही रहती है। पतिदेव ही कभी-कभार श्वसुर गृह की मुलाकात लेते रहते हैं। ऐसे में यदि लड़की को किसी अन्य पुरुष से गर्भ रह जाता है, तो कन्या पक्ष वाले अपनी इज्ज़त बचाने हेतु गाँव के बाहर दो चार बार पत्तल फिंकवा देते हैं और ये प्रचारित करते हैं कि पाहुने आए थे।[6]

पण्डित गोकुल झा सुषमा के हाथों पीटकर बाजू के गाँव जाते हैं तो पता चलता है कि वह भी उनके ससुराल का गाँव था। उस दिन उनके बेटे का नामकरण संस्कार था, अतः उनके साले उनको धाक-धमकी देकर जबरदस्ती पट्टे पर बिठा देते

हैं। वस्तुतः वह लड़का उनका नहीं था। कुछ महीनों पूर्व पत्तल फिंकवाकर घोषित किया गया था कि रात में पण्डितजी आए थे किन्तु दूसरे दिन कचहरी के काम से उनको दरभंगा जाना पड़ा था।

पण्डितजी वाली घटना से ज्वार में सुषमा की भी बदनामी होती । अतः उसकी माँ उसे पढ़ने हेतु शहर भेज देती है। सुषमा मेधावी लड़की है, अतः मेट्रिक में प्रथम श्रेणी प्राप्त कर जिले भर में प्रथम आकर उस परीक्षा को उत्तीर्ण करती है। बाद में स्नातक की उपाधि वह युनिवर्सिटी में प्रथम आकर प्राप्त करती है।

बी.ए. में फर्स्ट आने पर सुषमा के सम्मान समारोह का जो कार्यक्रम रखा जाता है उसमें प्रदेश के सहकारिता मन्त्रीजी को विशेष रूप से आमन्त्रित किया जाता है। उस कार्यक्रम में सुषमा को गाने के लिए कहा जाता है। सुषमा पहले तो मना करती है, पर बाद में सबके आग्रह पर गाती है। किन्तु उसके बाद के अपने संक्षिप्त वक्तव्य में मन्त्रीजी तथा उनके चाटुकार लोगों को जबरदस्त आघात देती है। सुषमा मन्त्री महोदय को आड़े हाथों लेती है। उसे यह बुरा लगता है कि लड़की को हमेशा उसके सौन्दर्य या उसके सुमधुर कोमल कण्ठ के कारण सराहा जाता है। जिन लड़कियों ने बुद्धि-प्रतिभा के क्षेत्र में कीर्तिमान् स्थापित लिए हो उनका मूल्यांकन उन्हीं आधारों पर होना चाहिए। सुषमा की बातों से मन्त्री महोदय हतप्रभ से रह जाते हैं।[7]

इस घटना के बाद सुषमा को अपने फुफेरे भाई विपिन का घर भी छोड़ना पड़ता है। विपिन का एक मित्र नीरज सुषमा के सौन्दर्य तथा बुद्धि-प्रतिभा पर सौ जान से निसार था और वह सुषमा के सामने विवाह का प्रस्ताव भी रखता है, जिसे सुषमा तब अपनी हेकड़ी और अभिमान में ठुकरा देती है। उसके बाद वह अपने गाँव के रिश्ते के चारा मुरारी पण्डित के साथ निकल पड़ती है।

तब सुषमा की मुलाकात प्रोफेसर सागर चौधरी से होती है। सागर चौधरी एक कॉलेज में प्रोफेसर है। उनके धीर-गम्भीर-प्रगल्भ व्यक्तित्व से सुषमा आकर्षित होती है और वह प्रोफेसर चौधरी के सम्मुख विवाह का प्रस्ताव भी रखती है। प्रोफेसर सागर चौधरी इस प्रश्ताव को स्वीकार नहीं करते क्योंकि दोनों की वय में काफी अन्तर है। चौधरी चाहते है कि सुषमा उनके पुत्र पीयूष से विवाह कर ले किन्तु सुषमा जिद्दी है। उसने मानो ठान लिया है - बरहो तो शंभो नतौं रहौ कुँआरी।

सुषमा-चौधरी का विवाह होता तो आगे चलकर भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास 'रेखा' की नायिका रेखा भारद्वाज जैसी स्थिति का निर्माण होता। प्रोफेसर

चौधरी इस भय-स्थान को कदाचित् अच्छी तरह से जानते हैं। इस प्रकार प्रोफेसर सागर चौधरी जो मना करते हैं, उसमें एक समझदारी है, बल्कि वे उसे अपनी पुत्रवधू के रूप में स्वीकार भी करते हैं, किन्तु सुषमा इसे अपना अपमान समझती है। इसकी प्रतिक्रिया में वह राजनीति की ओर मुड़ जाती है। वह सोचती है कि अपनी बुद्धि-प्रतिभा के द्वारा वह इस क्षेत्र में आगे बढ़ सकती है। इस काजर की कोठरी में वह बेदाग रह सकती है। किन्तु यह उसकी भूल थी ।

प्रोफेसर सागर से हताश और निराश होकर सुषमा राजनीति का मार्ग पकड़ लेती है, परन्तु केन्द्रीय नेता के चुनाव-प्रचार के दरम्यान किसी पार्टी में कोई व्यक्ति उसे कोकाकोला में तेज शराब पिला देता है। शराब के उस नशे में उस रात उसका नैतिक अधः पतन हो जाता है। एक रात का पतन ऐसी अनगिनत रातों को लाता हैं। और सुषमा एक राजनीतिक - रूपसुन्दरी बनकर रह जाती है। लेखक के ही शब्दों में - ''सभाओं में माल्यार्पण करने से आरम्भ कर मोटरकारों की पिछली सीटों पर जमीं विभूतियों की पार्श्व नायिका और फिर होटलों और विश्रामगृहों में उनकी अंकशायिनी बनने तक के दायित्व को निभाते-निभाते ही उसका इतना कुछ छीज गया कि अब कोई महत्वाकांक्षा उसके अन्दर कहीं पर मारे, इसका प्रश्न ही नहीं था।''[8]

कमलेश्वर के उपन्यास 'काली आँधी' की नायिका के साथ ऐसी ही कोकाकोला वाली घटना घटित होते हुए बताया गया है। किन्तु वहाँ उसे धीर-गम्भीर नायक मिल जाता है। दूसरे 'काली आँधी' की नायिका एक बहुत बड़े व्यक्ति की बेटी थी, अतः उसके साथ कोई ऐसी शारीरिक छेड़छाड़ करने का साहस नहीं कर सकता था। प्रस्तुत उपन्यास की नायिका सुषमा यदि इस दुर्घटना को दुर्घटना समझकर भूल जाती और यौन पवित्रता के विचारों से अभिमुक्त हो जाती तो उसका भविष्यत् पतन रुक जाता। किन्तु वह उस घटना को अपने मनोमस्तिष्क से चिपका लेती हैऔर स्वयं को अपवित्र समझने लगती है। 'एक अपवित्र वस्तु की क्या दरकार' इस भावना से अनुप्रेरित होकर वह पतन की गर्ता में निरंतर गिरती चली जाती है।

उक्त घटना के बाद सुषमा यदि प्रोफेसर सागर को मिलती और प्रोफेसर सागर यदि उससे उदारतापूर्वक स्वीकार कर लेते तो कदाचित् सुषमा के जीवन को कोई किनारा मिलता । किन्तु प्रोफेसर सागर को वह पाँच वर्षों के बाद मिलती है। तब तक उसका काफी अधःपतन हो चुका था - गंगा गटर हो चुकी थी। इसके बावजूद यदि प्रोफेसर सागर कुछ साहस का परिचय देते तो सुषमा के जीवन को एक चौथा मोड़ मिल सकता था। किन्तु उसका कोई संकेत उपन्यास में द्रष्टिगोचर नहीं होता है।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'इदन्नमम' की नायिका मंदाकिनी के साथ भी बलात्कार की घटना होती है पर वह उसे 'किसी कुत्ते के मुँह मारना' से ज्यादा अधिक महत्व उसे नहीं देती और स्वयं को सामाजिक कार्यों में झोंक देती है परन्तु सुषमा में इस प्रकार का जुझारू माद्दा नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि सुषमा राजनेताओं के हाथों की ही नहीं, स्वयं लेखक के हाथों की भी कठपुतली है।

भाषा की दृष्टि से यदि प्रस्तुत उपन्यास पर विचार किया जाए तो कहा जा सकता है कि उसकी भाषा उसकी सामाजिक कथा-वस्तु के अनुरूप है। इसमें कतिपय शब्द ऐसे आए हैं जिनका अर्थघटन हम उपन्यास की कथावस्तु की पृष्ठभूमि में ही कर सकते हैं। जैसे एक शब्द है 'कुलीन'। 'कुलीन' का कोशगत या अभिधागत अर्थ तो ऊँचे कुलवाला या खानदानी ऐसा होगा। किन्तु उत्तरी बिहार में श्रोत्रीय ब्राह्मण होते हैं उनको कुलीन ब्राह्मण कहा जाता है। जिन गरीब ब्राह्मण माँ-बापों की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं होती कि वे अपनी पुत्रियों का विवाह दहेज या तिलक देकर कर सके, तो ऐसे माँ-बाप अपनी पुत्रियों का विवाह कुलीन ब्राह्मणों से कर देते हैं। ये कुलीन ब्राह्मण कई-कई विवाह करते हैं। विवाह के उपरान्त पत्नी को अपने साथ न ले जाकर पितृगृह में ही छोड़ जाते हैं और वे ही लोग समय-समय पर अपनी ससुराल में आते हैं। ऐसे ही 'पाहुना' शब्द का शाब्दिक अर्थ तो अतिथि या मेहमान होता है। किन्तु यहाँ पर कुलीन दामाद के लिए इसका प्रयोग मिलता है। 'पत्तल फिंकवाने' का शाब्दिक अर्थ होगा भोजनोपरांत जूठी पत्तलों को बाहर फिंकवा देना। परन्तु प्रस्तुत उपन्यास में उसका एक दूसरा ध्वन्यार्थ मिलता है। कुलीन दामाद खसुर गृह बार-बार तो आते नहीं है। कभी छठे-छमाहे आते हैं। ऐसी स्थिति में किसी कुलीन-विवाहिता स्त्री को किसी अन्य पुरुष से गर्भ रह जाता है तो उसके अभिभावक कुछ-कुछ दिनों के अंतराल में बाहर पत्तल फिंकवा देते हैं और लोगों को जताते है कि 'पाहुने' आए थे ताकि किसी तरह उनकी इज्जत-आबरु बच जाए। इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में कई ऐसे शब्द मिलते हैं जो उसकी कथावस्तु के बिहारी परिवेश को उजागर करते हैं। उपन्यास की भाषा पर समग्रतया विचार किया जाए तो भाषा सीधी-सादी-सरल भाषा है, परन्तु लेखक की प्रकृति संस्कृत तत्सम शब्दावली की और अधिक झुकी हुई है। अतः संस्कृत शब्दों का प्रयोग बहुतायत से मिलता है। उपलब्धि, कोकिल कण्ठ, माल्यार्पण, पार्श्व नायिका, अंकशायिनी आदि शब्द इसके प्रमाण है। कथावस्तु के अनुरूप कहावतों और मुहावरों के प्रयोग भी मिलते हैं। जिनकी चर्चा यथेष्ट स्थान पर की जाएगी ।

सूरज के आने तक

लेखक सरकार के अलग-अलग विभागों में उच्च अधिकारी की हैसियत से काम कर चुके हैं, अतः ग्राम्य जीवन को लेकर उनके जो अनुभव हैं उनका यथार्थ आकलन उनकी औपन्यासिक कृतियों में उपलब्ध होता है। 'सूरज के आने तक' उसका प्रमाण है। इस उपन्यास का दूसरा नाम 'आखिर कब तक' भी है। उपन्यास के मुखपृष्ठ तथा भीतर के पृष्ठ पर 'सूरज के आने तक' लिखा गया है, किन्तु उपन्यास के पृष्ठों पर 'आखिर कब तक' अंकित है। अतः ऐसा लगता है कि प्रथमतः लेखक ने 'आखिर कब तक' ऐसा नाम रखा हो और बाद में उसे अधिक सकारात्मक बनाने के लिए, आशावादी स्वर को जगाने के लिए 'सूरज के आने तक' ऐसा शीर्षक रखा हो।

उपन्यास में भारत सरकार द्वारा प्रायोजित साक्षरता अभियान योजना को कार्यान्वित करने की बात है। इस परियोजना के लिए परियोजना पदाधिकारी मुहम्मद सत्तार को बिहार के बेनसागर और बाजीतपुर गाँव में भेजा जाता है। मुहम्मद सत्तार के साथ उन्हें इस काम में सहायता करने हेतु राधा नामक एक सुशील एवं सुसंस्कारी महिला को भी रखा जाता है। बेनसागर और बाजीतपुर पिछड़े हुए गाँव हैं। शिक्षा के अभाव में वहाँ जात-पाँत, ऊँच-नीच तथा छुआछूत को खूब माना जाता है। धार्मिक अन्धविश्वास खान-पान के सम्बन्ध में धार्मिक संकीर्णता, अन्तर्जातीय विवाह के प्रति विरोध की भावना जैसी बातें भी उपन्यास में उभरकर आती हैं। एक उच्च पदाधिकारी होने के नाते लेखक को ग्रामीण जीवन के यथार्थ का जो बोध है उसका भली भाँति समायोजन उन्होंने किया है।

उपन्यास के प्रमुख पात्रों में नूनूबाबा, शतरूपा बुआ, लाल मोहर, परियोजना पदाधिकारी मुहम्मद सत्तार, राधा, महादेव, नारायण, पण्डित देवीशरण शास्त्री, गोवर्द्धन पण्डित, निरंजन ठाकुर, मनोहर राय, कमला, रूपा आदि हैं। जिनसे कथा के तानेबाने बुने गए हैं।

हमारे अधिकांश उपन्यास लेखकों ने धर्म के नकारात्मक पक्ष को लिया है। धर्म के नाम पर जो ढोंग-ढकोसले और पाखण्ड चलते हैं उनका पर्दाफाश किया है। किन्तु यहाँ लेखक ने धर्म के सकारात्मक पक्ष को लिया है। नूनूबाबा गाँव के कृष्ण-मन्दिर के पुजारी हैं। वे मात्र पुजारी नहीं है किन्तु गाँव की शैक्षिक, धार्मिक, आध्यात्मिक चेतना के प्रतीक हैं। नूनूबाबा दूसरे पुजारियों की तरह अन्धविश्वासों के प्रस्थापक नहीं है। वे विद्वान और शास्त्रज्ञ हैं। धर्म के सही स्वरूप को पहचानते हैं। मुहम्मद सत्तार साहब और राधादेवी के आने से पूर्व ही उन्होंने वहाँ के लोगों में बौद्धिक

चेतना की पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी। शतरूपा बुआ इन्हीं नूनूबाबा की धर्मपत्नी हैं और सही अर्थों में धर्मपत्नी हैं। नूनूबाबा की उदार विचारसरणी शतरूपा बुआ में भी संक्रमित हुई है। बल्कि शतरूपा बुआ की उदारता, बहुजन वत्सलता तथा संतोषी स्वभाव के कारण ही नूनूबाबा वह सब कर पाते हैं जो करना चाहते हैं। लालमोहर, महादेव, नारायण, राधा, पं. देवीशरण शास्त्री आदि सभी नूनूबाबा को बहुत ही आदर देते हैं और उनके हर कार्य में अपना सहयोग देते हैं। लालमोहर को एक तरह से नूनूबाबा का 'हनुमान' ही कहा जा सकता है।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने बेनसागर और बाजीतपुर दो गाँवों की गतिविधियों के द्वारा बिहार के ग्रामीण अंचल के लोगों की सोच को उजागर किया है। ये दोनों अत्यन्त पिछड़े हुए गाँव हैं और निरंजन ठाकुर और मनोहरराय क्रमशः उनके मुखिया हैं। इन गाँवों में आधुनिक शिक्षा का पूर्णतया अभाव है। फलतः जात-पाँत, उँच-नीच तथा छुआछूत के अनावश्यक और अप्रगतिगामी खयालों में वे लोग आकण्ठ डूबे हुए हैं। सरकार की तरफ से प्रौढ़-शिक्षा परियोजना के पदाधिकारी के रूप में मुहम्मद सत्तार को अधिकारी के रूप में नियुक्त किया जाता है। उनके साथ राधा नामक एक सुरिक्षित युवती भी सहायक के रूप में काम करती है। गाँव के पिछड़े हुए वातावरण के कारण पहले तो प्रौढ़-शिक्षा के लिए गाँव के लोग तैयार नहीं होते। वे समझते है कि उनका धर्म भ्रष्ट करने की सरकार की यह एक साजिश है। परन्तु बाद में नूनूबाबा दोनों गाँव के लोगों को समझाते हैं फलतः वे इस योजना के लिए तैयार होते हैं।

गाँव में जहाँ नूनूबाबा जैसे लोग हैं जो धार्मिक सहिष्णुता तथा उदारता के प्रतीक हैं, वहाँ पण्डित गोवर्द्धन जैसे लोग भी हैं जो परम्परागत रूढिवादी संकीर्णता के पक्षधर हैं। वस्तुतः पण्डित गोवर्द्धन हिन्दू धर्म के साम्प्रतिक दौर में पाए जाने वाले फण्डामेन्टालिस्ट लोगों की पंगत में आते हैं। परन्तु जेलयात्रा के दरम्यान उनमें एक वैचारिक परिवर्तन आता है और वे भी नूनूबाबा की तरह धार्मिक सहिष्णुता के पक्षघर हो जाते हैं। वस्तुतः ऐसे लोग बुरे नहीं होते। बुराई उनकी सोच में होती है। यदि इस सोच को ठीकठाक किया जाए तो ऐसे लोग कई बार सामान्यलोगों की तुलना में अधिक उपयोगी सिद्ध होते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में भी लेखक ने यही बताया है। गोवर्द्धन पण्डित न केवल जात-पाँत और छुआछूत के विचारों को तिलांजलि देते है प्रत्युत् अपने पुत्र का विवाह कमला नामक एक हरिजन कन्या से करवाने के लिए भी तत्पर हो जाते है।

उपन्यास में राधा और लालमोहर की प्रेमकथा को भी नियोजित किया गया

है। राधा सुशिक्षित युवती है, लालमोहर की संस्थागत शिक्षा (Accadamic) तो उतनी नहीं है, परन्तु वह नूनूबाबा की युनिवर्सिटी का एक जागृत एवं आज्ञांकित छात्र है। धर्म, पुराण, रामायण, महाभारत, इतिहास, समाजशास्त्र, भक्ति आदि विषयों की समझदारी उसकी बड़ी पक्की और गहरी है। परियोजना पदाधिकारी मुहम्मद सत्तार भी राधा को चाहते थे। किन्तु गाँव में एक घटना घटित होती है जिससे यह सिद्ध हो जाता है कि अब्दुल सत्तार को राधा से सचमुच का प्रेम नहीं था। वह केवल रूप और सौन्दर्य का आकर्षण मात्र था, मोह मात्रा था। गाँव में योजना को लेकर फसाद होता है। राधा लोगों की सहायता के लिए वहाँ पहुँच जाती है, परन्तु स्वयं उसमें फँस जाती है तब लालमोहर अपनी जान पर खेल जाता है। और राधा को बचा लाता है। अतः राधा को प्रतीति होती है लि लालमोहर का प्यार ही सच्चा प्यार है, क्योंकि अब्दुल सत्तार भी वहाँ थे परन्तु वे ऐसा कुछ नहीं कर पाते जो लालमोहर कर गुजरता है। इस घटना के बाद राधा तहे दिल से लालमोहर को चाहने लगती है। लालमोहर और राधा के इस प्रेम को नूनूबाबा तथा शतरूपा बुआ का भी आशीर्वाद मिलता है। वे दोनों परिणय सूत्र में बंधते हैं। नूनूबाबा तथा शतरूपा बुआ के रूप में लेखकने एक आदर्श दम्पति को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। वे अपनी सारी सम्पत्ति पचास बीघा जमीन, मन्दिर तथा मन्दिर का प्रांगण राधा के नाम कर देते हैं।[9] जहाँ हमारे आजकल के कई साधु-संत मन्दिरों, मठों, सम्प्रदायों और गद्दियों की जमीनों के लिए कोर्ट-कचहरी और मुकद्में करते पाए जाते हैं वहाँ नूनूबाबा और शतरूपा बुआ जैसे संत-महंत भी है जो ऐसा वीरल त्याग भी कर दिखाते हैं। जगदीशचन्द्र के उपन्यास 'कभी न छोड़े खेत' तथा नागार्जुन कृत 'इमरतिया' उपन्यास में इन तथाकथित संतो-महंतो और बाबाओं द्वारा ग्रामीण जनता का कैसा और कितना शोषण होता है उसकी परत-दर-परत खोली गयी है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने नूनूबाबा के रूप में एक ऐसे लोकसेवक को प्रस्तुत किया है जो विनोबा भावे, रविशंकर महाराज, ठक्कर बापा आदि की श्रेणी में आते हैं। धर्म और सम्प्रदायों के साथ यदि नूनूबाबा और शतरूपा बुआ जैसे लोग जुड़े तो समाज कल्याण के कई काम जो सरकारी स्तर पर नहीं होते हैं चुटकी बजाते ही संभव हो सकते हैं।

मिश्रजी के उपन्यासों में देवी देवताओं के मन्दिर तथा उनसे सम्बद्ध वृतान्त भी मिलते है। प्रस्तुत उपन्यास में भी कृष्ण मन्दिर, हनुमान मन्दिर, भूतेश्वर भगवान विश्वनाथ, दशाश्व मेघ, ज्ञानवापी जैसे कुछ मन्दिरों का विवरण उपलब्ध होता है। नूनूबाबा गाँव के कृष्ण मन्दिर के पुजारी है, किन्तु उनका व्यक्तित्व दूसरे पोंगा-पण्डित टाईप के पुजारियों से भिन्न है। हिन्दू धर्म का व्यापक दृष्टिकोण उनके व्यक्तित्व

चिन्तन में उपलब्ध होता है। लालमोहर, महादेव, नारायण आदि उनके निष्य है जिनके द्वारा वे गाँव में सांस्कृतिक चेतना जगाने का कार्य करते हैं।

शतरूपा बुआ नूनूबाबा की धर्मपत्नी है। इन दोनों का चित्रण लेखक ने आदर्श दम्पति के रूप में किया है। समाज में प्रायः देखा जाता है कि पति-पत्नी के विचारों तथा संस्कारो में कोई तालमेल नहीं पाया जाता । यहाँ बिलकुल अलग स्थिति है। इन दोनों में आचार-विचार के स्तर पर गजब का साम्य और संतुलन है। शतरूपा बुआ भी नूनूबाबा की तरह ही एक विशाल दृष्टिकोण वाली संस्कारी गृहस्थिन माता है। उनकी अपनी कोई सन्तान नहीं है, किन्तु गाँव के सभी लोगों को वह पुत्रवत् वात्सल्य प्रदान करती है। यह प्रायः देखा गया है कि धार्मिक संकीर्णता तथा छुआछूत की भावना स्त्रियों में अधिक पाई जाती है किन्तु शतरूपा बुआ इन सब ढकोसलों से मुक्त हैं। उपन्यास में इसका एक उदाहरण मिलता है। मुहम्मद सत्तार जैसे मुसलमान अधिकारी को भी वह अपने चौके में बिठाकर खाना खिलाती है। इस प्रकार ये दोनों पति-प्तनी बेनसागर और बाजीतपुर गाँव में चेतना की एक नई लहर उत्पन्न करते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास ग्रामीण-जीवन-सुधार के कार्यक्रमों को लेकर है। उपन्यास के शीर्षक 'सूरज के आने तक' से प्रतीत होता है कि लेखक उसमें-ग्रामीण जीवन में-चेतना की किसी लहर के पहुँचने की बात करता है। नूनूबाबा और शतरूपा बुआ जैसे लोग वहाँ उस नयी चेतना की पृष्ठभूमि का निर्माण करते हैं। जब इनको विश्वास हो जाता है कि वह किरण गाँव में लालमोहर और राधा के रूप में फूट चुकी है, तब वे मानो संन्यास ले लेते हैं। उनका कार्य तो चेतना की उस प्रथम किरण के आने तक का था। जब तक गाँव में अज्ञान, अस्पृश्यता, जाति-अहंकार, धार्मिक संकीर्णता का अंधकार था तब तक नूनूबाबा और शतरूपा बुआ दीपक की भाँति प्रकाशित होकर यथाशक्ति उस अंधकार को दूर करने का प्रयत्न करते रहते हैं। परन्तु जब युवापीढी तैयार हो जाती है तब वे उनके कंधो पर सारा दायित्व डाल देते हैं। उनकी भूमिका तो मानो सूरज के आने तक की थी। इस सन्दर्भ में डॉ. इला मिस्त्री के निम्ननिलिखत विचार ध्यातव्य कहे जा सकते हैं - ''वस्तुतः किसी भी देश या समाज में नेताओं, समाज सुधारकों और साधु संतों की यही भूमिका होनी चाहिए। उन्हें तो बस 'सूरज के आने तक' किसी भाँति जलते रहकर तमिस्रा को दूर करते हुए आनेवाली पीढ़ी तथा आनेवाले सुनहरे आशास्पद कल के स्वागत की तैयारियाँ करनी है। दूसरे शब्दों में कहे तो अपने जीवनकाल में अपने समानधर्मा, सहचिन्तकों की 'सैकण्ड केडर' तैयार करने का काम उनका होता है। और उसके तैयार होने पर उन्हें सारा दायित्य उस नई पीढ़ी पर डालकर अपने मोह का संवरण कर लेना

चाहिए। पर क्या हमारे नेता, साधु-संत और महंत ऐसा कर पाते हैं?''[10]

नूनूबाबा उपर्युक्त प्रश्न का मानो उत्तर है। वस्तुतः नूनूबाबा जैसे लोग कम होते हैं, पर होते अवश्य हैं। अच्छाई हमेशा 'माइनोरिटी' में होती है पर यह माइनोरिटी ही मेजोरिटी को रास्ता दिखाती है।

संक्षेप में प्रस्तुत उपन्यास के द्वारा लेखक ने धर्म के सकारात्मक आयामों को चिह्नत किया है।

कथावस्तु की दृष्टि से यदि प्रस्तुत उपन्यास की भाषा-संरचना पर विचार करें तो उसकी भाषा अपने कथानक के अनुरूप है। उसमें ग्रामीण विकास हेतु सरकार की विकास - योजनाओं को निरूपित किया गया है। अतः उसमें परियोजना पदाधिकारी, प्राढ़-शिक्षा, राष्ट्रीय यज्ञ, अनुदेशक, अनुदेशिका, बी.डी.ओ., नेत्रदान यज्ञ, रिपोर्ट, प्रशिक्षण, प्रभार, फॉर्वर्ड, ट्रेनिंग, पर्यवेक्षिका, पर्यवेक्षक, पंचायत भवन, स्टिच, परिधान, मुख्तार, ऑफिसर, पार्लियामेन्ट, माइक्रोस्कोप, ब्लॉक आफिस, फाइल, नाजीर बाबू, क्वार्टर, प्रौढ़-शिक्षा-केन्द्र, मुकदमा, मातहत, गजेटेड़ ऑफिसर, अभियान, सुपरवाइजर, एकसैंट, राजपत्रित अधिकारी, श्रमदान, एसेम्बली, साम्प्रदायिकता, सामाजिक-आर्थिक क्रान्ति जैसे सरकारी संस्थानों से जुड़े शब्द पाए जाते हैं।[11] प्रौढ़-शिक्षा पदाधिकारी के रूप में मुहम्मद सत्तार नामक अधिकारी को लिया है। अतः कुछ उर्दू के शब्दों का आना स्वाभाविक ही कहा जाएगा। जैसे-मकसद, खलल, दफ़ा हो जाओ, शिकस्त, जबान, कातिलाना हमला, फसाद, बेतहाशा, इशारा, आलम, मनहूसियत, नाज़ीर, बेईमान, जमाखोर, एतराज़, ज़लील, खिलाफ, गुलदस्ता, बेवकूफ, मुखातिब आदि-आदि।[12]

प्रस्तुत उपन्यास में नूनूबाबा, शतरूपा बुआ, लालमोहर तथा देवीशरण शास्त्री जैसे पात्र आए हैं और इन पात्रों के द्वारा धर्म, भारतीय सभ्यता और संस्कृति तथा हिन्दू धर्म के वास्तविक-व्यापक स्वरूप की चर्चा स्थान-स्थान पर हुई है। अतः इसमें संस्कृत शब्दावली का प्रयोग मिलना भी स्वाभाविक समझा जाएगा। यद्यपि शब्दविचार के अंतर्गत इन शब्दों की विस्तृत चर्चा होगी तथापि उदाहरण स्वरूप कुछ शब्द यहां प्रस्तुत है। यथा प्रातः स्मरणीय, जगज्जननी, भुवनमोहिनी, किंकर्तव्यविमूढ, व्यामोह, आशीर्वाद, वेष्ठित, श्वेत रमश्रुयुक्त, पोषिता, वन्यबाला, साष्टांग, यज्ञोपवीत, उदरपूर्ति, स्वर्णमण्डित मन्दिर शिखर, कार्य-कारण सम्बन्ध, अन्तः सलिला, अस्तांचलगामी, आदि-आदि।[13] इसी तरह संस्कृत के अनेक श्लोक और सूक्तियाँ भी प्रस्तुत उपन्यास में उपलब्ध होते हैं। एतदर्थ उपन्यास के 5, 8, 11, 13, 18, 31, 35, 37, 64,

85, 86, 109, 112, 125, 137, 166 पृष्ठ पर दिये गए संस्कृत श्लोक और सूक्तियों को उल्लेखनीय कहा जा सकता है। अन्यत्र यथेष्ट स्थान पर उनकी चर्चा होगी, अतः यहाँ केवल उल्लेख भर किया जा रहा है।

उपन्यास का परिवेश ग्रामीण है, अतः उसमें कहावतों और मुहावरों का प्रयोग भी पुष्कल परिमाण में मिलता है। यथा-थोथा चना बाजे घना, अधजल गगरी छलकत जाय, कानी गैया का अलग बयान, तीन कनौजिया तेरह चूल्हे, अपनी अपनी डफली अपना अपना राग, दूध का दूध पानी का पानी आदि कहावते हैं।[14] मिश्रजी की भाषा मुहावरेदार है। अतः प्रस्तुत उपन्यास में भी कई मुहावरे आए हैं। जिनमें से कुछेक का उल्लेख हम कर रहे हैं। यथा-लाले पड़ना, दांत कटी रोटी खाना, दाल-भात में मूसलचन्द बनना, बाग के पके आम की तरह टपकना, हथियार डालना, हाथ पीले कर देना, टट्टी की ओट में शिकार खेलना, डाली के पीले पात, आस्तीन में सांप पालना, तिल का ताड़ बनाना बेड़ा गर्क करना आदि-आदि।[15]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्रस्तुत उपन्यास की भाषा सहज, सरल, मुहावरेदार तथा पात्र और परिवेश के अनुरूप है।

एक और अहल्या

डॉ. मिश्र के सामाजिक उपन्यासों में 'एक और अहल्या' का विशिष्ट स्थान है। उपन्यास के सन्दर्भ में कहा गया है- "A novel is not merely a story, It is something grater than story something beyond the story" डॉ. मिश्र के उपन्यासों में भी कथा तो रहती ही है, किन्तु उसके साथ-साथ भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक-शैक्षिक परिवेश की अनेकानेक विसंगतियों का भी व्यंग्योन्मुखी चित्रण मिलता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो मिश्रजी के उपन्यास पाठकों को कुछ नए आयामों पर सोचने-विचारने के लिए विवश करते हैं।

'एक और अहल्या' से ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें कोई ऐसी नारी की कथा-व्यथा होगी जो किसी पुरूष के अत्याचार का शिकार हुई होगी। प्रस्तुत उपन्यास की नायिका पृथा है। पृथा की माँ दकियानूसी जातिगत सोच-विचार का अनुसरण करनेवाली रूढ़िचुस्त नारी है। उसकी सोच-विचार का दायरा जात-पाँत और जाति-बिरादरी से आगे कभी बढ़ नहीं पाता। अपने इन पुराने दकियानूस खयालों के कारण वह अपनी लड़की पृथा का विवाह अपनी जाति के विश्वास नामक युवक से कर देती है। विश्वास के चेहरे पर चेचक के दाग हैं। बदसूरत होने के बावजूद आंतरिक

सौन्दर्य की दृष्टि से भी वह कंगाल है। संस्कारिता का कोई चिह्न उसमें दृष्टिगत नहीं होता। 'सर्वे गुणा काञ्चनं आश्रयते' के सिद्धांतनुसार उसमें एक ही गुण था। वह धनाढ्य बाप का बेटा था। पुराने अमीर वर्ग में तो साहित्य-संगीत कला आदि के भी कुछ संस्कार मिलते हैं। किन्तु विश्वास का परिवार आधुनिक काल के नवधनिक वर्ग (Neo capatalist) का प्रतीक है - बाहर से सम्पन्न भीतर से खालीखम । यह नया धनिक वर्ग अर्ध-शिक्षित और अधकचरा है। फैशन परस्ती और पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण ही उनके जीवन का लक्ष्य होता है। वह पौराणिक इन्द्र तो फिर भी सुन्दरता और पौरुष के प्रतीक के रूप में कहीं-कहीं उभरकर आता है। एक स्थान पर इस माइथोलोजिकल इन्द्र का उल्लेख इस प्रकार हुआ है - ''एक दिन गौतम की अनुपस्थिति में इन्द्र ने मुनी वेश में आकर संभोग की इच्छा प्रकट की। अहल्या यह जानकर कि इन्द्र स्वयं आए हैं और उसे चाहते है इस अधम कार्य के लिए उद्यत हो गई।''[16] प्रस्तुत कथन से यह ज्ञापित होता है कि इन्द्र का व्यक्तित्व स्त्रियों को लुभाता था। यद्यपि अन्यत्र ऐसी भी कथा प्रचलित है कि अहल्या के रूप-सौन्दर्य से मुग्ध इन्द्र षड़यन्त्र द्वारा अहल्या के सतीत्व को भ्रष्ट करता है।

परन्तु विश्वास की कथा इस पौराणिक इन्द्र से कहीं मेल नहीं खाती। इन्द्र तो अहल्या को पाने के लिए षड़यंत्र रचता है। यहां ऐसा कुछ नहीं है। स्वयं पृथा की माँ उनकी धन-सम्पत्ति की चकाचौंध में अंधी होकर पृथा का हाथ विश्वास के हाथ में देती है। पृथा और अहल्या की कहानी में केवल एक ही समानता है कि जैसे अहल्या का उद्धार राम के स्पर्श से हुआ था, ठीक वैसे ही पृथा का उद्धार मनीष के द्वारा होता है। मनीष एक उच्च और उदार विचारों में जीने वाला आधुनिक चेतना-सम्पन्न आदर्शवादी युवक है। वह पृथा को सच्चे दिल से प्रेम करता है। अतः एक वर्ष के बाद वह पृथा को उसके वैवाहिक जीवन के नरक से बचा लेता है।

उपन्यास के अंत में ऐसा संकेत मिलता है कि पृथा के पिता वकील से मिलकर सब तय कर लेते हैं कि पृथा को कैसे तलाक दिलाना है। मनीष पृथा को अंगीकृत कर लेता है, यह जानते हुए भी कि पृथा की कोख में विश्वास का गर्भ अंकुर रूप में पनप रहा है। पौराणिक गौतम ऋषि तो इन्द्र द्वारा बलाकृत अहल्या को अपवित्र मानकर त्याग देते हैं, यहाँ मनीष उदारतापूर्वक पृथा को अपना लेता हैं। उपन्यास का आलेखन पृथा की स्मरणयात्रा के रूप में हुआ है। इस स्मरणयात्रा में पृथा के मानसपटल पर अनेक प्रसंग मंडराते हैं, किन्तु इन सभी प्रसंगो और घटनाओं के केन्द्रस्थ पात्र के रूप में मनीष है, जो एक प्रकार से उपन्यासकार का प्रवक्ता (Spokeman) भी है और नायक भी है। उपन्यास में प्रारंभिक और अन्तिम

घटना को छोड़कर बाकी तमाम घटनाएँ विगत में घटित होती हैं और स्मृतियों के माध्यम से उनको प्रस्तुत किया गया है। पहली घटना है मनीष के ग्रीटिंग कार्ड की। पृथा के जन्मदिन पर मनीष ग्रीटिंग कार्ड भेजता है, जिससे आशंकित होकर पृथा की माँ सावित्री उसके साथ बुरा व्यवहार करती है। उपन्यास के प्रारंभ में ही ये कार्डवाली घटना दे दी गई है और लेखक बीच-बीच में उसका बराबर उल्लेख करता चला है, ताकि पाठक को बराबर यह प्रतीति होती रहे कि उपन्यास में प्रत्यक्षतः तो यही घटित हुआ है, शेष घटनाएँ पृथा के स्मृतिपट पर ही उभरती हैं। अन्तिम घटना वह है जिसमें मनीष द्वारा पृथा को अपना लिए जाने वाली बात आती है।

पृथा के पिता विश्वमोहन एक सीधे-सादे आदमी हैं। कुछ-कुछ निष्क्रीय और दीर्घसूत्री व्यक्ति है। उनकी इस प्रकृति के कारण उनके परिवार को आधुनिक सुख-सुविधा का अभाव भोगना पड़ता है। उनके एक मित्र है सुदर्शनजी । मनीष उनका पुत्र है। आई.ए.एस. कर के भारत सरकार के एक उच्च पद पर वह आसीन हो जाता है। एक उच्च अधिकारी के अनुरूप परिपकवता एवं गंभीरता उसमें पाई जाती है। आजकल के लड़कों जैसी चंचलता और हल्कापन उसमें नहीं हैं। वह एक प्रतिभा सम्पन्न, विवेक सम्पन्न, स्वप्नदर्शी तथा स्मृतिजीवी आदर्शवादी युवक है। मनीष पृथा के यहाँ आता-जाता था। साहचर्य तथा मनीष के आदर्शवादी विचारों के कारण पृथा मनीष को मन ही मन चाहने लगती है। एक प्रकार से मनीष को लेकर पृथा में बद्धत्व ग्रंथि (Fixation complex) विकसित होती है। उसके मन का आदर्श पुरूष मनीष और केवल मनीष है। दोनों की आयु में पन्द्रह वर्ष का अन्तर है। फिर भी पृथा उसको चाहती है। परन्तु उसकी माँ सावित्री को यह आदर्शवादी युवक एक आँख नहीं सुहाता। पति के आदर्शवादी स्वभाव के कारण भौतिक अभावों से उसे गुजरना पड़ा है। कदाचित् उसकी प्रतिक्रिया है सावित्री में। मनीष का धीर-गंभीर स्वभाव भी उसे पसंद नहीं आता। यहाँ सादगी और भौतिकता के बीच में एक प्रकार का संघर्ष पाया जाता है। पृथा की माँ सावित्री पुराने युग की होते हुए भी भौतिकता के आग्रह के सन्दर्भ में नये युग की प्रतीत होती है। दूसरी तरफ पृथा नए युग की होते हुए भी इस सन्दर्भ में पुरानेपन की पक्षधर है।

चरित्र-चित्रण की जो अनेकानेक विधियाँ है उनमें विसदृशता चरित्रांकन पद्धति (Contrast theory) भी प्रमुख है। इसमें दो विलोमी चरित्रों को आमने-सामने रखकर उनकी विसदृशता के आधार पर (Contrast) उभय के गुण-अवगुणों पर प्रकाश डाला जाता है। यह एक ज्ञापित तथ्य है कि दो व्यक्तियों या दो वस्तुओं में यदि विरोध हो तो उसकी सहायता से उनके निजी गुण-दोष अधिक अच्छी तरह से

अभिव्यंजित होते हैं। डॉ. मिश्र ने प्रस्तुत उपन्यास में मनीष और विश्वास के रूप में ऐसे दो चरित्र रखे हैं। मनीष हृदय और आत्मा से पृथा को चाहता है तो दूसरी तरफ विश्वास केवल पृथा के शरीर को चाहता है। मनीष और विश्वास दोनों अलग-अलग छोरों पर है। मनीष का प्रेम पवित्रता, संस्कार, नैतिकता, संयम और विश्वास पर आद्धृत है तो विश्वास का प्रेम वासनाग्रस्त है। उसमें यौन-क्षुधा के अतिक्ति कुछ भी नहीं है। इस यौन-क्षुधा के कारण उसमें अनेक प्रकार की कामजनित विकृतियाँ और कुंठाएँ पाई जाती हैं। पृथा का आदर्श पुरुष मनीष है, अतः स्वाभाविकतया विश्वास की खोखली विकृत हरकतों के प्रति पृथा के मन में घृणा का भाव पैदा होता है।

विश्वास का परिवार आधुनिक उपभोक्ता संस्कृति का प्रतीक है। नव धनिक वर्ग का प्रतीक है। उनके घर में भौतिक समृद्धि की चकाचौंध है । रुपए-पैसे की कोई कमी नहीं है। कोठियाँ, रंगीन टी.वी., वी.सी.आर. आदि भौतिक समृद्धि के सभी साधन विश्वास के यहाँ उपलब्ध हैं, नहीं है तो केवल आत्मिक समृद्धि - संस्कारों की समृद्धि। अतः पृथा के लिए विश्वास के साथ का सहजीवन नरक तुल्य हो जाता है। किन्तु वैवाहिक जीवन के एक वर्ष में पृथा विश्वास का गर्भ धारण कर चुकी है और अपने मायके द्विरागमन के लिए आई है। हिन्दी भाषी प्रदेशों में लड़की की प्रथम प्रसूति अपने ससुराल में होती है। अतः प्रसूति के पहले लड़की को एक बार उसके मायके भेजा जाता है और फिर मायके से विदा करके उसके ससुराल वाले उसे अपने यहाँ ले जाते हैं। इस रस्म को द्विरागमन कहते हैं । किन्तु द्विरागमन के लिए आई हुई पृथा ससुराल जाने की अपेक्षा मनीष के यहाँ चली जाती है। पृथा के पिता विश्वमोहन अपनी पुत्री की कथा-व्यथा को समझते हुए विश्वास से विवाह विच्छेद की तमाम कानूनी तैयारियाँ कर लेते हैं और मनीष भी पृथा को विश्वास के गर्भ सहित उसे स्वीकारने के लिए राजी हो गया है जिसे हम पहले निर्दिष्ट कर चुके हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में पृथा की कहानी के साथ-साथ उसकी बहन जयश्री की कहानी भी प्रकारान्तर से आती है। जयश्री का विवाह श्रीधर नामक एक युवक से हुआ है। पृथा के पिता विश्वमोहन को कोई पुत्र न था। अतः श्रीधर के पिता को यह आशा थी कि अंततः विश्वमोहन की जायदाद उनके पुत्र को मिलेगी। जयश्री के विवाह के समय दान-दहेज के नाम पर झाँसा दिये जाने पर भी जायदाद की आशा में वे शांत बैठे रहते हैं। परन्तु जयश्री के विवाह के बाद विश्वमोहन को सावित्री से एक पुत्र प्राप्त होता है। अतः श्रीधर के पिता की आशाओं पर ठण्डा पानी फिर जाता है। उनका लड़का बेकार और निठल्ला है, अतः विश्वमोहन से बदला लेने के लिए वे उसे ससुराल भेज देते हैं। इस प्रकार पिछले कुछेक वर्षों से जयश्री और उसका पतिभी

विश्वमोहन के यहाँ ही रहते हैं और उनका आर्थिक बोझ भी पृथा के पिता को ही उठाना पड़ता है। पृथा को भी अपने जीजा का विशेष ध्यान रखना पड़ता है।

उपन्यास का प्रकाशन सन 1991 में हुआ था, अतः उसमें सन् 1990 तक की सामाजिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक गतिविधियों का लेखा-जोखा भी प्रस्तुत किया है। ऐसी घटनाओं में रुस के गोर्बाचोव के ग्लासनोस्त तथा पैरेस्त्रोइका के विचार, चीन का छात्र आंदोलन, आचार्य रजनीश की एड्स की बीमारी के कारण मृत्यु, राजीव गाँधी द्वारा प्रवर्तित अठारह वर्ष की आयु तक में युवामताधिकार का प्रावधान, यु.एस.ए. तथा पश्चिम के देशों में चल रहे नारी-मुक्ति आंदोलन आदि प्रमुख हैं । इन घटनाओं के अलावा देश में व्याप्त भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, लालफिताशाही, दोषपूर्ण शिक्षा पद्धति, दोषपूर्ण परीक्षा पद्धति, छात्रों में बढ़ती अनुशासनहीनता, भौतिकवादी चिन्तन प्रणाली, टी.वी. और फिल्मी कल्चर के कारण नैतिक मूल्यों का ह्रास, पश्चिमी सभ्यता के प्रचार के कारण भारत में गहराता हुआ सांस्कृतिक संकट, पंचतारक, होटल तथा कोलगर्ल संस्कृति, वी.सी.आर. पर अश्लील ब्लू फिल्मों का प्रदर्शन और उसके कारण फैलता वैचारिक प्रदूषण जैसी चीजों को लेखक ने रेखांकित किया है। इससे लेखक की बहुश्रुतता प्रमाणित होती है।

जहाँ तक प्रस्तुत उपन्यास की भाषिक-संरचना का सवाल है, यहाँ भी लेखक ने संस्कृतक बहुला भाषा का प्रयोग किया है। उपन्यास में समाहरणालय, संचिका, निलंबित (Suspensed), पंचतारक, अपसंस्कृति, मज्झिमनीकाय, निमज्जित जैसे शब्द प्रयोग भाषागत संस्कृत निष्ठता का परिचय देते हैं। कहावतों और मुहावरों का प्रयोग भी पाठक का ध्यान आकर्षित करते हैं। कहावतों में कहीं-कहीं संस्कृत कहावतों का प्रयोग भी मिलता है। यथा-संशयात्मा विनश्यति, शुभस्य शीघ्रम् तथा प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते (अर्थात् प्रसन्नता से सारे दुःखों का नाश हो जाता है)।[17] कुछ नई कहावतों का प्रयोग भी मिलता है । जैसे-कमल के पत्ते और हाथी की पीठ पर पानी की बूंदे कहाँ तक टिक पाती हैं तथा तवे से उतरकर चूल्हें में गिरना आदि-आदि।[18] कहावतों की तरह मुहावरों के भी प्रयोग मिलते हैं। यथा-भारी पत्थर के नीचे के कीड़े का कुलबुलाना, रेत से तेल निकालना, उपरी आमदनीं का जून महीने की बरसात की तरह प्यारा लगना, घोड़े बेचकर सोना, किसी का दीर्घसूत्री होना, ओपण्ड बिफोर योर नोक, दाल-भात में मूसलचन्द बनना, सूरसा के मुँह की तरह फैलना, किसी की ऐसी-तैसी कर देना आदि-आदि।[19]

इसी तरह उपन्यास में लेखक ने नए रूपक, नए उपमान और नए विशेषणों का भी प्रयोग किया है। जिनकी यथोचित चर्चा परवर्ती अध्यायों में होगी। यहाँ भाषा

के सन्दर्भ में कुछेक उदाहरणों का संकेत मात्र दिया जा रहा है। यथा - संशयरूपी तर्कश, दहेज रूपी दानव, जिज्ञासारूपी सर्व, नाजायत पैसों की अमरलता, सहानुभूति के धागे जैसे नए रूपकों का प्रयोग मिलता है।[20] नए उपमानों का प्रयोग भी भाषा में दिलचस्पी रखनेवाले पाठकों का ध्यान आकर्षित कर सकता है। जैसे-पृथा जिस प्यार से मनीष को देखती है उसके लिए लेखक ने कहा है - चक्रवाक का पूनों के चांद का निहारना (पृ.28) अप्रिय बात के लिए मधु के कटोरे में मक्खी डाल देना (पृ.33) जैसे उपमानों का प्रयोग हुआ है। तो ऊपरी आमदनी वाली फाइलों के लिए दुधारू संचिकाएँ तो दुर्लभ व्यक्ति के लिए ओयसिस (मरुउद्यान) शेयरों के लिए चढ़ते ऊँचे भावों से मन का प्रसन्न होना - गंगा की लहरों पर नावों का उछलना जैसे उपमान प्रयुक्त हुए हैं।[21] नए रूपक, नए उपमान की तरह कुछ नए विशेषण भी मिलतें हैं। जैसे दस्यू समाज, जवाबी तमंचा, दुधारु संचिका, दीर्घसूत्री स्वभाव, निरामिष बहाना, अलंघ्य दीवार, भटकैल प्रजातंत्र आदि।[22]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि एक और अहल्या उपन्यास भी भाषिक संरचना की दृष्टि से समृद्ध और सम्पन्न उपन्यास है।

लक्ष्मणरेखा (1993)

जब साहित्येतर क्षेत्र का कोई लेखक साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश करता है, तो उसके दो फायदे स्पष्टतया उभरकर आते हैं। एक तो यह कि वह साहित्यिक प्रवादों और पूर्वाग्रहों से मुक्त रह सकता है और दूसरे वह साहित्य में कुछेक नए विषयों को लेकर आता है। डॉ.भगवतीशरण मिश्र अर्थशास्त्र के छात्र रहे हैं और आ.ए.एस. करके भारत सरकार की विभिन्न सेवाओं में कार्य कर चुके हैं यह निर्दिष्ट किया जा चुका है। फलतः अपने लेखन में वे नए-नए विषयों को लेकर आते हैं। 'लक्ष्मणरेखा' (1993) इसी उपक्रम का उपन्यास है।

संस्कृत में एक सूक्ति वाक्य मिलता है - 'अति सर्वत्र वर्जयेत्।' बुरी बात की अति तो भयंकर विस्फोट लाती ही है, परन्तु अच्छी या भली बात की अति भी उपयुक्त नहीं समझी जा सकती। दूध-घी खाना अच्छा है पर, उसका अतिरेक चरबी और कोलस्ट्रोल को बढ़ा सकता है। डॉ. पारुकांत देसाई द्वारा प्रणीत 'मानस माला' में एक दोहा मिलता है-

''अति मधुरता भी बुरी, होता उससे नाश।
गन्ने को सहना पड़ता, कोल्हू केरा त्रास।।''[23]

जिस प्रकार गन्ना मीठा है, तो केवल इसी मिठास के कारण उसको कोल्हू में पीसा जाता है ठीक उसी प्रकार अध्यधिक भलाई और मधुरता से भी कई बार व्यक्ति, परिवार, समाज या राष्ट्र को अपरिहार्य क्षति पहुँच सकती है। अतः हमें चाहिए कि प्रत्येक क्षेत्र में हम कोई न कोई सीमा-रेखा निश्चित करें। इस सीमा-रेखा को ही लाक्षणिक भाषा में 'लक्ष्मणरेखा' कहा गया है। सारी रामायण की रामायण के मूल में यही बात है कि सीता ने लक्ष्मण द्वारा खीचीं गई लक्ष्मण रेखा का उल्लंघन किया, जिसके कारण लंकापति रावण सीता को अहृत करने में सफल हो सका। उसी घटना के कारण हमारी भाषा में यह शब्द अवतरित हुआ है।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने हमारे समाज की ही नहीं, बल्कि पूरे विश्व की एक आसन्न समस्या को प्रस्तुत किया है। यह समस्या है प्रदूषण की समस्या। यह प्रदूषण कई प्रकार का होता है। इन प्रदूषणों में वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, भूमि प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण आदि को परिगणित किया जा सकता है। इनके अतिरिक्त एक गंभीर प्रकार का प्रदूषण है जो मानव जाति की सभ्यता, संस्कृति और सुचिन्तित अग्रगामी परंपराओं को लील सकता है और जिसके कारण मानव सभ्यता गहरे संकट में पड़ सकती है, वह प्रदूषण है वेचारिक या सांस्कृतिक प्रदूषण। अंग्रेजी में कहा गया है-

"If wealth is lost, Nothing is lost; If health is lost, than something is lost; but If character is lost than everything is lost." और यह वैचारिक प्रदूषण चारित्रिक स्खलन को आमंत्रित करता है। अतः उसके खतरों से हमें सावधान रहना होगा।

प्रस्तुत उपन्यास में गीतिका और विश्वंभर जैसे पात्रों के द्वारा लेखक ने आज के समय की विश्वजनीन समस्या को उठाया है। इस समस्या पर यदि समय रहते विचार न किया गया तो उसका खतरा समग्र विश्व को, समग्र मानव-जात को उठाना पड़ेगा। यह समस्या है प्रदूषण की समस्या। धरती को 'सर्वसहा' कहा गया है। जैसे माँ अपने बेटों के दोषों, पापों, अत्यारों को नजरअंदाज़ करती है, ठीक उसी प्रकार यह धरती भी - धरतीपुत्रों - मानवों - के अनेक अत्याचारों को सह रही है। परन्तु यह सिलसिला आखिर कब तक चल सकता है। हिन्दी में एक कहावत प्रचलित है - एक समय आता है जब चन्दन भी आग फेंकता है। चन्दन की लकड़ी से सुगन्ध निःसृत होती है, किन्तु उसे भी यदि आवश्यकता से अधिक घिसा जाए तो उसमें से आग झरने लगती है। पृथ्वी को 'वसुधा' कहा गया है। 'वसु' अर्थात् संपत्ति 'वसुधा' अर्थात् संपत्ति को धारण करने वाली पृथ्वी। मानव-संपत्ति के तमाम स्त्रोत पृथ्वी से जुड़े हुए हैं। मनुष्य को चाहिए कि वह इन स्त्रोतों का उपयोग इस प्रकार करे कि

संतुलन बना रहे। हम स्त्रोतों का उपयोग ही करते चले जायें, उनकी क्षतिपूर्ति का कभी विचार ही न करें, उस ओर से लापरवाह होते जाएं तो एक समय ऐसा आ सकता है कि पृथ्वी का प्राकृतिक संतुलन ऊपरी निर्दिष्ट विभिन्न प्रदूषणों से गड़बड़ा जाए । यदि धनवान बाप के बेटे, पिता की ओर से मिली हुई संपित्ति में कुछ भी जोड़े बिना, निरंतर खर्च ही करते जाएँ, तो कैसी भी अतुल संपत्ति होगी एक दिन खत्म हो जाएगी। पहले भी अनेक बार ऐसा हुआ है कि लगातार दो-तीन वर्षों तक पर्याप्त वर्षा हुई न हो। परन्तु पहले कभी ऐसा नहीं हुआ कि पृथ्वी के गर्भ में कभी पानी की कमी महसूस हुई हो किन्तु इधर लोगों के स्वैराचार के कारण, बढ़ते हुए प्रदूषण के कारण न केवल जल प्रदूषित हो रहा है बल्कि पृथ्वी के गर्भ का जल भण्डार भी खत्म होने पर है।

रात-दिन के पेट्रोल के धुएँ से वायु प्रदूषित हो रही । पेट्रोल-चालित प्रदूषण उत्पादक यातायात के साधनों में अनेक गुना वृद्धि हो रही हैं। कारखाने भी जहर उगल रहे हैं और उनमें भी निरंतर वृद्धि हो रही है। जहाँ केवल पैदल या साइकल यात्रा से काम चल सकता था वहाँ अब छोटे-छोटे बच्चे भी बात-बात में स्कूटर, मोपेड़ और गाड़ी लेकर निकल पड़ते हैं। वातावरण में कार्बन का प्रमाण निरंतर बढ़ रहा है और उस कार्बन के विष का पान करके उसे प्राणवायु में बदल देनेवाले तरु-शिव निरंतर कट रहे हैं। पहले जन संख्या कम थी, प्रदूषण बढ़ाने वाले साधन कम थे, कारखाने कम थे तब वन और जंगल ज्यादा थे। वृक्ष ज्यादा थे। अब इन सबमें बेतहाशा वृद्धि हुई हैं। अब पहले की अपेक्षा जंगल और वृक्ष अधिक होने चाहिए किन्तु हो रहा इसके विपरीत है। केवल गुजरात का उदाहरण लें तो स्वतंत्रता पूर्व यहाँ 22% जंगल था, अब केवल 5 प्रतिशत रह गया है, जब कि वह होना चाहिए 25 प्रतिशत यहां मेरी स्मृति में हमारे एक प्रोफेसर साहब का शेर कौंध रहा है-

''खूश्बो के चूक जाने की न लेश आशंका हमें।
ये पेड़ कटते जाएँगे, मिट्टी का क्षरण होगा।।''[24]

उपन्यास में अनेक स्थानों पर 'लक्ष्मणरेखा' शब्द का प्रयोग हुआ है। यहाँ इस शब्द का प्रयोग जहाँ पर्यावरण की लक्ष्मणरेखा का उल्लंघन है। वहाँ सांस्कृतिक लक्ष्मणरेखा से होने वाले प्रदूषण की बात भी की गई है। उपन्यास का नायक विश्वंभर एक पर्यावरणशास्त्री है, अतः गीतिका और विश्वंभर की कहानी के साथ-साथ समानान्तर पर्यावरण योजनाओं की गतिविधियों को भी रेखांकित करने का प्रयास लेखक ने किया है।

उपन्यास की नायिका गीतिका जवाहरलाल नेहरु युनिवर्सिटी की एक प्रतिभा-सम्पन्न छात्रा है। गीतिका के पिता जंगलों के बहुत बड़े ठेकेदार हैं। गीतिका अत्यधिक महत्वाकांक्षी युवती है। 'नदी नहीं मुड़ती' की सुष्मा की तरह गीतिका भी राजनीति के क्षेत्र का वरण करती है। अपनी महत्वाकांक्षा को आकार देने के लिए वह नवीन नामक एक छात्र नेता का सोपान के रूप में प्रयोग करना चाहती है किन्तु वह स्वयं नवीन के चंगुल में फँस जाती है। नवीन एक चलता-पुर्जा टाईप का शराबी, जुआरी और लंपट व्यक्ति निकलता है। इतना ही नहीं वह एक नंबर का काहिल (आलसी), निष्क्रीय और परोपजीवी युवक होता है। सुन्दर-सम्पन्न युवतियों को अपने वाक्जाल में फँसाकर वह उनके पैसों से ऐश करता है। पिता की इच्छा के विपरीत गीतिका नवीन से विवाह कर लेती है। विवाह के उपरांत नवीन का असली स्वरूप शनैः शनैः प्रकट होने लगता है। गीतिका के पिता भी अपने दामाद के असली स्वरूप को पहचान लेते हैं। अतः वे गीतिका को अपने घर से निकाल देते हैं। गीतिका के पिता अपनी बेटी को एक भी रूपया नहीं देना चाहते थे, किन्तु गीतिका की माँ के अत्यधिक आग्रह पर उसे पाँच लाख रूपए दे देते हैं। नवीन इन रूपयों को एक ही साल में उड़ा देता है।

रुपए जब समाप्त होने पर आते हैं, तब नवीन गीतिका के सामने हनीमून का प्रस्ताव रखता है। हनीमून के लिए वे नैनीताल जाते हैं। नैनीताल में इस्माइल नामक एक नाविक से गीतिका का परिचय होता है। वस्तुतः वे इसी नाविक की नाव में नौका-विहार के लिए निकले थे। इस्माइल की वाचालता और मूर्खता के कारण नवीन के विगत जीवन का पन्ना खुल जाता है। गीतिका के सामने नवीन की लंपटता और जालसाज़ी का पर्दाफाश हो जाता है। गीतिका को मालूम हो जाता है कि एक साल पहले नवीन किसी दूसरी दुल्हन को लेकर नैनीताल हनीमून के लिए गया था और तब उसने इस्माइल के ही नाव को किराये पर लिया था। अपनी ऐयाशी की झोंक में उसे यह बात विस्मृत हो गयी थी, परन्तु इस्माइल उसे पहचान लेता है। इस्माइल में व्यवहारिक धंधादारी का अभाव है, अतः इस रहस्य को गीतिका पर प्रकट कर देता है। राज खुल जाने के बावजूद नवीन बड़ा ढीढ़, निर्लज्ज और धृष्ट होकर कहता है - "कल यहाँ के किसी कोर्ट में ही हम आपसी रज़ामंदी से तलाक ले लेंगे। मुझे तुम्हारी आवश्यकता नहीं रही। तुम्हारा पासबुक भी रीता हो गया है।"[25] इस प्रकार गीतिका को आर्थिक दृष्टि से पूर्णरूपेण चूस लेने के बाद नवीन उसे छोड़ देता है।

नवीन की इस बेवफाई से, तथा अपने पिता के यहाँ न लौट पाने की विवशता के कारण गीतिका आत्महत्या का प्रयास करती है। किन्तु विश्वंभर उसे बचा लेता है।

विश्वंभर भी जवाहरलाल युनिवर्सिटी का छात्र और गीतिका का सहाध्यायी था। छात्र जीवन में उनमें मैत्री भी थी, किन्तु बीच में नवीन के आ जाने से गीतिका की जिंदगी की गाड़ी दूसरी पटरी पर दौड़ने लग गई। विश्वंभर लेखक, पत्रकार,गीतकार और पर्यावरणशास्त्री है। प्राचीन संस्कृति, प्राचीन जीवन मूल्य तथा धर्म में उसका विश्वास है। उसके ही प्रयत्नों से गीतिका लखनऊ के किसी कॉलेज में व्याख्याता हो जाती है। कॉलेज के टुर के सिलसिले में, वह पुनः नैनीताल आती है। नैनीताल में विश्वंभर से विवाह करना चाहती है, किन्तु एन मौके पर इस्माइल वाली घटना घटित होती है। इस्माइल के कारण उसका भयावह अतीत सामने आ जाता है। गीतिका को अपना वर्तमान और भविष्य विच्छिन्न होता हुआ प्रतीत होता है। रातभर वह चैन से सो नहीं पाती। एक भयानक द्वन्द्व उसके भीतर चलता है। वह तय करती है कि विश्वंभर से वह कुछ नहीं छिपायेगी। इस निश्चय के अंतर्गत प्रातः काल वह सब कुछ बताने जा रही थी कि विश्वंभर रहस्य प्रकट करता है कि वह उसके अतीत से पूर्णतया वाकिफ है। आत्महत्या के बाद की बेहोशी में गीतिका काफी कुछ बक गई थी। गीतिका के अतीत को जानते हुए भी विश्वंभर उसके सामने विवाह का प्रस्ताव रखता है। गीतिका भी विश्वंभर को चाहती है। किन्तु अब की बार वह कोई गलती नहीं करना चाहती। वह अपने पिता को दुबारा आघात देना नहीं चाहती। उनकी सम्मति से ही वह विवाह करना चाहती है। किन्तु यहाँ दूसरे प्रकार की अड़चन सामने आती है। गीतिका के पिता नवीन से उसके विवाह का विरोध इसलिए करते थे कि वह एक आवारा किस्म का लड़का था जिसके साथ उनको अपनी बेटी का भविष्य अंधकारमय दृष्टिगोचर होता था। विश्वंभर के विरोध का कारण दूसरा है। गीतिका के पिता को यहाँ अपना भविष्य खतरे में पड़ता हुआ नजर आता है। विश्वंभर पर्यावरणशास्त्री है। प्रकृति, वनों और वृक्षों का प्रेमी है तो गीतिका के पिता जंगलों के ठेकेदार होने के कारण वनों और वृक्षों के दुश्मन है।

पिता और प्रेमी के विलोमी व्यक्तित्व के कारण गीतिका और विश्वंभर अलग हो जाते हैं। गीतिका लखनऊ जाकर अपने अध्यापन कार्य में व्यस्त हो जाती है तो विश्वंभर उत्तरांचल की और निकल जाता है। यहाँ उसकी भेंट विश्वविख्यात पर्यावरणवादी पं.सुन्दरलाल बहुगुणा से होती है। विश्वंभर पंडितजी की प्रवृत्तियों में पूर्णतया निमग्न हो जाता है। उनके द्वारा चलाये जाने वाले आंदोलनों में सक्रिय हिस्सेदारी करते हुए इनके साथ अनशन पर भी बैठ जाता है। पंडितजी को ऐसे ही किसी शिक्षित नवयुवक की आवश्यकता थी। वे अपना समग्र प्रेम उस पर उड़ेल देते हैं। उन दिनों पर्यावरण को लेकर ब्राजिल में एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन होने जा रहा

था। बहुगुणाजी विश्वंभर को उसमें भारतीय प्रतिनिधि के रूप में भेजना चाहते हैं। गीतिका के पिता को जब इस बात का पता चलता है तब वे मारे खुशी से उछल पड़ते हैं। लोभ-लालच और वैभव- विलासिता का मोह पराजित होता है। वे विश्वंभर से कहते हैं - "तुम गीतिका से शादी कर सकते हो। मैंने छोड़ी वनों की ठेकेदारी।"[26]

इस प्रकार उपन्यास की कथा सुखान्त है। 'एक और अहल्या' की पृथा की भाँति गीतिका को भी अपना शिखर पुरुष विश्वंभर के रूप में प्राप्त होता है। डॉ. भगवतीशरण मिश्र के प्रायः सभी सामाजिक उपन्यासों में हमें यह स्थिति दृष्टिगत होती है।

गीतिका और विश्वंभर की कहानी के साथ-साथ जहाँ एक तरफ सांस्कृतिक एवं परिवेशगत पर्यावरण के असंतुलन को समाकलित किया गया है, वहाँ दूसरी और प्राकृतिक पर्यावरण के प्रदूषित होने की चिंता को भी गहराया गया है। उपन्यास में सम-सामयिक तथा व्युत्पत्तिगत अनेक विषयों को भी उठाया गया है, जैसे राजनीतिक प्रदूषण, सांस्कृतिक प्रदूषण, मार्क्सवाद की चर्चा, चर्चिल की जीवनी, तुलसीदास और रत्नावली का प्रसंग, वातावरण, ओजोन की परत के नष्ट होने से आगामी भविष्य में आने वाले घातक परिणाम, विकसित देशों द्वारा हो रहे प्रदूषण की प्रतिशत की प्रधानता (लगभग 150 प्रतिशत), परजीवि वृक्ष - पारासाइट की चर्चा, रात-दिन केवल प्राणवायु देनेवाले पीपल के वृक्ष की विशेषता, फ्लोरेशन नाइटिंगल की बात, आरण्यक संस्कृति की बात, संस्कृति की चर्चा, होमियोपेथी की ब्रानिया तथा चाईना-थर्टी जैसी दवाइयों की चर्चा, पं. सुन्दरलाल बहुगुणा की पर्यावरण चिन्ता आदि-आदि। इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास अनेक वैश्विक समस्याओं को उकेरता है। 'लक्ष्मणरेखा' की समीक्षा करते हुए डॉ. श्रीमती भुपेन्द्र कलशीने जो कहा है वह अत्यन्त विचारणीय है - "प्रस्तुत उपन्यास की स्थापना है कि हमारी संस्कृति मूलतः अरण्य संस्कृति रही है। वन हमारी संपदा रहे हैं, तपोवन रहे हैं । इन तपोवनों में ऋषियों-मुनियों ने ज्ञान की साधना की और वेद-वेदांगों को रचा। 'मृत्युर्मा अमृतं गमय।' का मन्त्र रचा। प्राणी मात्र में जो श्रेष्ठ था उसका अवगाहन किया। किन्तु आज हम अपनी वनसंपदा को भूल रहे हैं। हम भूल रहे हैं कि हमारे संस्कृति पुरुष राम और कृष्ण ने जीवन का एक सोपान इन्हीं वनों में बिताया । आज वनमात्र आर्थिक दोहन का साधन रह गये हैं। नदियों का निर्मल जल प्रदूषित हो रहा है, भूस्खलन हो रहा है, सारा वातावरण विषाक्त हो रहा है। यह प्रदूषण वन से मन तक है। हम यह भूल रहे हैं कि मनुष्य के भीतर भी एक पर्यावरण होता है। वह अक्सर

घृणा, विद्वेष, ईर्ष्या, स्वार्थ, मोह, मत्सर, लोभ, लालच के कारण प्रदूषित होता है। स्वच्छ, निर्मल, शान्त वातावरण में एक अद्भुत ऊर्जा व्याप्त रहती है। इसे आध्यात्मिक ऊर्जा भी कह सकते हैं। विश्वंभर इसीलिए मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर, गुरुद्वारा में जाना चाहता है क्योंकि पूजा-स्थलों का पवित्र वातावरण ऊर्जा देता है। इस ऊर्जा में, इस अग्नि में कुछ देर के लिए ही सही मनुष्य अपने सारे प्रदूषण को जला डालता है।''[27]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि मिश्रजी का यह उपन्यास अनेक अन्य उपन्यासों से ही नहीं, अपितु एक दो अपवादों को छोड़कर हिन्दी की समूची उपन्यास परंपरा से अलग पड़ता है। उसमें निरूपित समस्या आज की वैश्विक समस्या है, जिस पर यदि समय रहते विचार न किया गया तो पृथ्वी पर का जीवन नरक तुल्य हो जाएगा।

जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया गया है 'लक्ष्मणरेखा' पर्यावरण के विषय से सम्बद्ध है। प्रस्तुत उपन्यास की भाषिक-संरचना भी उसके कथ्य के अनुरूप है। लेखक ने कुछ अंग्रेजी कहवतों का भी प्रयोग किया है। जैसे - 'मेन काण्ट लीव बाय ब्रेड़ एलोन' तथा 'टुमोरो नेवर कम्स' (पृ. क्रमशः 111 तथा 140) । कहीं-कहीं अंग्रेजी कहावत के अनूदित रूप को प्रस्तुत किया है, जैसे - 'हर सफल व्यक्ति के पीछे कोई नारी अवश्य होती है' (पृ.56)। लेखक संस्कृत कहावत का प्रयोग करना भी नहीं चूकते हैं। यथा - 'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमीह विद्यते (पृ. 155)। तो दूसरी तरफ लक्ष्मण रेखा बनाए रखना, महात्वाकांक्षा का गला घोंट देना, एनसायक्लोपीड़िया होना, किसी के जीवनाकाश में धूमकेतु की तरह आना, मन के पुएँ पकाना, रेत की दीवार होना जैसे मुहावरों के सटीक प्रयोग मिलते हैं।[28]

कहावत मुहावरों के अतिरिक्त लेखक ने एण्टीबायोटिक्स की बैसाखियाँ, संयम के डण्डे, भावनाओं की वीथियाँ, मकानों के जंगल, भावनाओं का ज्वार, राजनीति का ककहरा, आयातित संस्कृति का भूत जैसे नवीन रूपकों का भी प्रयोग किया है।[29] नवीन रूपकों की भाँति लेखक ने कुछ नवीन एवं विलक्षण कहे जाने वाले विशेषणों का प्रयोग भी किया है। यथा - वनैले फूल, इल्हामी मुहर , वर्णनरहित समाज, अनाम पुलक, लीप रीडर, अधपिए कप, आहत दर्प, अपरिभाषित, प्रसन्नता, विलक्षण वाग्मिता, मरणधर्मा संसार, अपूरणीय कटाई आदि-आदि।[30]

नवीन रूपकों, उपमानों और विशेषणों की भाँति नवीन भाषभिव्यंजना भी दृष्टिगोचर होती है। उपन्यास नायिका गीतिका नवीन को लेकर जो धोखा खाती है

उसे लेखक ने इस प्रकार अभिव्यक्त किया - ''यह क्या कि जिस व्यक्ति को एक बलिष्ठ वृक्ष मान वह एक वल्लरी की तरह उसके सहारे ऊँचाइयों पर चढ़ना चाहती थी वह स्वयं ही एक लुंज-पुंज लता बन आया था।''[31] गीतिका नवीन के दु:स्वप्नों में डूबी हुई थी कि सहसा उसे विश्वंभर की स्मृति का आ जाना उसे सुखद ही लगता है, ठीक वैसे ही जैसे कोई गरम लू-लपटों का मारा किसी सघन वृक्ष की शीतल छाया पा गया हो।''[32] ऐसे तो अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं।

(02) ऐतिहासिक उपन्यास

जो उपन्यास ऐतिहासिक वृतान्त को लेकर चलते हैं, उनको ऐतिहासिक उपन्यास कहा जाता है। पूर्व-निर्दिष्ट तथ्य के अनुसार उपन्यास एक यथार्थधर्मी विधा है। अत: यथार्थ का ध्यान तो यहाँ हर लिहाज़ से रखा जाता है। यहाँ पर प्रदेश-विशेष तथा काल-विशेष के यथार्थ को केन्द्र में रखा जाता है। दूसरी ओर लेखक अपने काल के युगबोध से भी सम्बद्ध होता है। अत: ऐतिहासिक उपन्यास के आलेखन में इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि लेखक चाहे किसी भी काल के वृत्तान्त को लेकर क्यों न चल रहा हो, उसका ध्यान अपने समय की नब्ज पर भी होना चाहिए। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कृत उपन्यास 'चारुचन्द्रलेख' एक ऐतिहासिक उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास में मुसलमानों के आक्रमण के समय को लिया गया है। हिन्दी साहित्य की दृष्टि से यह सिद्धों और नाथों का समय है। यद्यपि उपन्यास में मध्यकाल के इतिहास को केन्द्र में रखा गया है तथापि उसमें ऐसे कई कथन या वक्तव्य आते हैं जिनसे वर्तमान को भी प्रेरणा मिल सकती है। उपन्यास में एक स्थान पर गोरक्षनाथ अमोघवज्र को कहते हैं - ''सारे जगत को भूलकर अपनी मुक्ति की चिंता करना सबसे बड़ी माया है। आप जलते हुए शस्य-क्षेत्रों की उपेक्षा नहीं कर सकते, टूटते हुए मंदिरों से आँख नहीं मूंद सकते, ललकते हुए शिशुओं और घिघियाते हुए वृद्धों की ओर से कान नहीं बंद कर सकते। आप संगठित होकर ही संगठित अत्याचार का विरोध कर सकते हैं।''[33]

कहने का अभिप्राय यह कि ऐतिहासिक उपन्यास में लेखक की एक दृष्टि तो उसमें निरूपित देशकाल की ओर रहती है, किन्तु दूसरी दृष्टि वर्तमान समाज-व्यवस्था पर भी रहती है। वस्तुत: ऐतिहासिक उपन्यास का लेखक इतिहास के गवाक्ष से वर्तमान का लेखा-जोखा लेता है।

ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास पर आद्धृत होता है। अत: उसमें कपोल-कल्पित

या मनगढंत बातें, या इतिहास को तोड़ने-मरोड़ने के प्रयत्न नहीं चल सकते। लेखक की दृष्टि वस्तुनिष्ठ होनी चाहिए। उसमें एक यथार्थ इतिहास - दृष्टि का होना भी आवश्यक है।

इसका अर्थ यह कतई नहीं कि ऐतिहासिक उपन्यास को उल्था होना चाहिए। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि ऐतिहासिक उपन्यास भी एक कला है, साहित्य है, शास्त्र नहीं। इतिहास शास्त्र है। अत: साहित्य और शास्त्र की व्यावर्तक रेखाएँ तो यहाँ स्पष्ट होगी ही। इतिहास के साथ उसमें कल्पना का विनियोग भी होगा, किन्तु साथ ही साथ उसे ऐतिहासिक तथ्यों का निर्वाह-भी करना होगा। ऐतिहासिक पात्रों के अतिरिक्त तत्कालीन सामाजिक पृष्ठभूमि के निर्माण के लिए वह कुछ काल्पनिक पात्रों की सृष्टि भी करता है। इन पात्रों को ऐतिहासिक पात्रों के साथ फेंटकर वह एक एक घोल तैयार करता है कि वे काल्पनिक पात्र भी ऐतिहासिक पात्र से जान पड़ते हैं।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने साहित्य और इतिहास के सन्दर्भ में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं - ''रस की सृष्टि ही उद्देश्य है, अतएव उसको उत्पन्न करने की आवश्यकता होती है - कवि लोग उतनी ले लेने में कुछ संकोच नहीं करते। उपन्यासकार एक मात्र ऐसे ऐतिहासिक रस के लालची होते हैं। उन्हें सत्य की कुछ विशेष परवाह नहीं होती। यदि कोई व्यक्ति उपन्यास में इतिहास की उस विशेष गंध और स्वाद से ही संतुष्ट न हो और उसमें से अखण्ड इतिहास को निकाले तो वह व्यंजन में साबित जीरे, धनिये, हल्दी और सरसों को ढूंढेगा।''[34]

महान ऋषि उपन्यासकार टॉल्सटोय अपने 'War and peace' के परिशिष्ट में लिखते हैं - "A historian and an artist describing an historic work has two quite different tasks before them. As an historian would be wrong if he tried to present an historical person in his entirety, in all the complexity of his relations with all sides of life, so the artist would fail to perfom his task were he to represent the person always in its historic significance........ The historian has to deal with results of an event, the artist with the fact of event..... Either from his own experience, from his letters, memoirs and accounts, the artist realises a certain event to himself and very often (task example of a battle) the deductions the historian permits himself to make as to the activity of such armies prove to be the very opposite of artist's deductions."[35]

अभिप्राय यह कि मानव-चरित्र के सूक्ष्म अध्ययन की दृष्टि से उपन्यासकार यदि इतिहास से कुछ स्वतंत्रता लेता है तो वह स्वाभाविक है। उपन्यासकार इतिहास के महानायकों व्यक्ति - मानव के रूप में देखता है। वह स्वयं को घटना के परिणामों पर केन्द्रित नहीं करता, बल्कि वह उसके मूल कारणों पर प्रकाश डालता है। ऐसे लेखक को हम पूर्णरूपेण ऐतिहासिक उपन्यासकार कह सकते हैं। यहाँ एक बात ध्यानार्ह रहे कि जो उपन्यास वर्तमान से मुक्ति और अतीत में पलायन के उद्देश्य से लिखा गया हो वह उपन्यास न साहित्य के साथ न्याय करता है न इतिहास के साथ।

वृन्दावनलाल वर्मा हिन्दी के सुप्रसिद्ध इतिहास कार हैं। उनका ऐतिहासिक उपन्यास के सन्दर्भ में जो वक्तव्य है वह ध्यान देने योग्य है - ''उपन्यास और कहानी आपको आज भी दैनिक समाचार पत्र की अपेक्षा किसी दूसरे समय और वातावरण में उठा ले जाती है। आप अपने तत्कालीन क्षण को भूल जाते हैं और कहानी के क्षणों में विचरने लगते हैं। मैं आप लोगों को कभी सैकडों वर्ष पीछे ले जाता हूँ और कभी उससे भी अधिक परन्तु इतिहास की उदासीनता में आपको फिर भी जकड़े रहता हूँ। किसी देश का इतिहास भूत और वर्तमान से अलग रहकर नहीं चलता। भूत में ग्राह्य और अग्राह्य दोनों ही हैं। भूत के ग्राह्य को लेना और अग्राह्य को छोड़ देना वर्तमान के लिए उतना ही आवश्यक है जितना भविष्य के लिए वर्तमान की सुरुचिता और सुघड़ता का। मैं गोरवगाथा द्वारा वर्तमान को भुलाता नहीं हूँ और न पाठक को पलायनवादी बनाता हूँ। मैं उसको उत्तेजित करके भविष्य के लिए प्रबल बनाता हूँ। मैं ताश के सुन्दर पत्ते बनाता हूँ। आप उनसे तुरूप, ब्रिज चाहे जो खेलें, परन्तु खेलें सहानुभूति, ईमानदारी और खिलाड़ीपन के साथ। मैं केवल लकड़ी का खेल नहीं सिखाता जिससे केवल हाथ-पाँव तोड़े जाएं या खोपड़ी का भंजन किया जाएँ। वर्तमान समस्याओं का हल अचेत मन पर हमला करने से ज्यादा आसान होगा और सचेत मन पर हमला करने से कम। जब मैं शताब्दियों पहले के वातावरण में पाठकों को उठा ले भागता हूँ, तब वे वर्तमान का कोई भी आग्रह या दुराग्रह साथ नहीं ले जा पाते। फिर वहीं उनके अचेत मन में प्रवेश करके जो कुछ करना चाहता हूँ, कर डालता हूँ। वे जब उपन्यास को समाप्त करने के बाद वर्तमान में लौटते हैं तब अपने आपको कुछ अधिक सशक्त, स्फूर्तिमय और बढ़ा हुआ पाते हैं। उनको मैं पुराने वातावरण में ले जाकर पुरातन की ग्राह्य और अग्राह्य दोनों मूर्तियाँ दिखाता हूँ जिससे वे वर्तमान में लौटकर पुरातन के सड़ियलपने को वहीं छोड़ आएँ और सशक्त को अपने साथ रखकर वर्तमान की समस्या से भिड़ने में अपने-आपको समर्थ पाएँ।''[36]

ऐतिहासिक उपन्यास पर विचार करते हुए हमें एक समस्या से जूझना पड़ता

है कि क्या निकट अतीत के कथानक पर आद्धृत उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यास की कोटि में आ सकता है? उदाहरणतया यशपाल द्वारा प्रणीत 'झूठा सच' उपन्यास भारत-पाकिस्तान विभाजन पर आधारित उपन्यास है। उसमें 1942 तथा 1947 के आसपास की घटनाओं का वर्णन है जिन्हें अब 50 से भी ज्यादा वर्ष हो गए हैं। इस दृष्टि से इसमें निरूपित काल अब निकट अतीत की कोटि में आ सकता है तो क्या ऐसा उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यास कहा जा सकता है? इस सन्दर्भ में डॉ. शशिभूषण सिंहल के एतद् विषयक विचारों को देख जाना समुपयुक्त रहेगा-

ऐतिहासिक उपन्यास तथा अन्य किसी प्रकार की कथा में मौलिक अन्तर है - प्रत्येक के निरीक्षण के प्रश्न को लेकर। ऐतिहासिक उपन्यासकार जिन बाह्य साक्ष्यों के आधार पर जिस युग और उसके निवासियों का पुनर्सृजन करता है, वह स्वयं उनका अंग नहीं होता। वह तटस्थ द्रष्टा और विवेचक के रूप में, प्राप्य विभिन्नपूर्ण अथवा आंशिक तथा परस्पर विरोधी दृष्टिकोणों का व्याख्याता होता है। यशपाल 'झूठासच' में घटित घटनाओं के स्वयं द्रष्टा अथवा साक्षी होने के कारण अपनी कृति को ऐतिहासिक उपन्यास की संज्ञा नहीं दे सकते। वे उपन्यास में चित्रित युग के स्वयं एक अनुभूतिशील अंग रहे हैं। यदि वे उपन्यास में प्रस्तुत किए गए वृत्तों, पात्रों तथा समाज को अन्य स्त्रोतों एवं साक्ष्यों से प्राप्त कर, उनके औचित्य एवं प्रामाणिकता पर विचार कर, अपने निष्कर्ष रूप में, उन्हें प्रस्तुत करते, तो यह रचना ऐतिहासिक उपन्यास की अधिकारिणी होती। अतः ऐतिहासिक उपन्यास में अतीत का चित्रण रहता है, यह चित्रण ऐसे अतीत का होता है जो पर्याप्त समय पूर्व घट चुका है और उपन्यासकार के व्यक्तिगत अनुभव की पहुँच से परे हैं।[37]

ऐतिहासिक उपन्यास के सन्दर्भ में उपर्युक्त विवेचन के उपरांत डॉ. भगवतीशरण मिश्र के ऐतिहासिक उपन्यासों पर संक्षेप में विचार करने का यहाँ हमारा उपक्रम है। इस दृष्टि से शिवाजी के जीवन पर आद्धृत 'पहला सूरज' मीरा बाई के जीवन पर आधारित 'पीताम्बरा' कबीर के जीवन से सम्बद्ध 'देख कबीरा रोया' गुरु तेगबहादुर तथा गुरु गोविन्दसिंह के इतिहासवृत्त से जुड़े 'का के लागूं पांव' तथा 'गोबिन्द गाथा' महात्मा गाँधी तथा स्वाधीनता संग्राम से संपृक्त 'शान्तिदूत' आदि उपन्यासों को हम ऐतिहासिक उपन्यासों के संवर्ग में रख सकते हैं। 'शान्तिदूत' निकट अतीत के इतिहास का उपन्यास है, किन्तु लेखक डॉ. भगवतीशरण मिश्र के समय के पूर्व का है। डॉ. मिश्र प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में उसके वृतान्त में कहीं नहीं आते। अतः डॉ. शशिभूषण सिंहल द्वारा परिभाषित ऐतिहासिक उपन्यास की कोटि में प्रस्तुत उपन्यास को रखा जा सकता है।

पहला सूरज (9 (41)

'पहला सूरज' छत्रपति शिवाजी की वीरता, देशप्रेम, धर्म-प्रेम, उनकी भक्ति-भावना और साहस उनके उज्ज्वल और निष्कलंक चरित्र को यथार्थतः उकेरने वाला एक सशक्त ऐतिहासिक उपन्यास है। डॉ. भगवतीशरण मिश्र ने प्रस्तुत उपन्यास की भूमिका में लिखा है - "एक ऐतिहासिक उपन्यास की सफलता इतिहास होने में नहीं बल्कि इतिहास पढ़ने के लिए प्रेरित करने में हैं। अगर इस पुस्तक को पढ़कर इतिहास के इस काल पुरुष के सम्बन्ध में और अधिक जानने-समझने, इतिहास के धूल-सने पृष्ठों को उलटने-पलटने का कुछ भी आपका मन हो आया तो लेखक अपने श्रम को सार्थक समझेगा।"[38] उपन्यास के अध्ययन से फलित होता है कि लेखक अपने उद्देश्य में सफल हुए हैं।

उपन्यास का शीर्षक 'पहला सूरज' कई संकेतों को उकेरता है। हमारे अधिकांश इतिहासकार सन् 1857 को भारतीय स्वाधीनता के आरंभ-बिन्दु के रूप में देखते हैं। प्रस्तुत उपन्यास का लेखक अपनी इस औपन्यासिक रचना के माध्यम से यह प्रस्थापित करना चाहते हैं कि स्वाधीनता की भावना का उत्स इससे भी पूर्व हमें छत्रपति शिवाजी प्रथम मराठा सरदार हैं जिन्होंने पददलित, लांछित हिन्दू जनता में अस्मिता जगाने का कार्य किया है। शिवाजी हमारी ऐतिहासिक परम्परा के प्रथम सूरज है जिन्होंने हिन्दुओं के लूटे-खसूटे स्वत्व को गौरवान्वित किया। शिवाजी से पहले राणा प्रताप के रूप में हमें एक राजपूत वीर का परिचय होता है। किन्तु राणा प्रताप तथा शिवाजी के समय की स्थितियों में अन्तर है। राणा प्रताप का समय अकबर का समय है। अकबर एक उदार धर्मसहिष्णु और व्यापक दृष्टिसंपन्न बादशाह था और उसके समय में हिन्दुओं की स्थिति पददलितों जैसी नहीं थी। छत्रपति शिवाजी के सामने औरंगजेब है जिसे धार्मिक संकीर्णता का और कट्टरता का प्रतीक हम मान सकते हैं। गुजराती के सूत्रसिद्ध चिंतक डॉ. गुणवंत शाह ने एक बार अपने कॉलम में लिखा था कि शाहजहाँ के बाद यदि दारशिकोह दिल्ली के तख्त पर बैठता तो शायद हमारा इतिहास दूसरे प्रकार का होता। इस सन्दर्भ में डॉ. इला मिस्त्री अपनी टिप्पणी देती हैं - "राणा प्रताप प्रसिद्ध राणा सांगा की वंश परंपरा की मजबूत गौरवमयी कड़ी है। वे एक स्थापित राजवी है। जबकि शिवाजी को तो शून्य से सर्जन करना था। एक सामान्य मराठा सरदार से मराठा साम्राज्य की स्थापना करते हुए 'छत्रपति' के बिरुद को धारण करना निश्चय ही असाधारण वीरत्व की पहचान है। इससे उनकी संगठन शक्ति, बुद्धि-चातुर्य तथा तितिक्षा का परिचय मिलता है।"

प्रस्तुत उपन्यास छत्रपति शिवाजी के जीवन-कथन पर आधरित है और उनका

व्यक्तित्व भारतीय इतिहास में चर्चित और कहीं-कहीं विवादास्पद भी रहा है। अंग्रेज तथा कुछ विदेशी इतिहासकारों ने उनको षड़यंत्रकारी, कुटिल, कपटी तथा लुटेरा तक कहा है। यद्यपि शिवाजी ने लूटफाट की थी। गुजरात के सूरत को भी लूटा था। किन्तु यह समय का तकाज़ा था। उसमें राष्ट्रहित समाहित था। शिवाजी के पास आर्थिक साधनों तथा सैन्य शक्ति का अभाव था और उनके सामने सुसम्पन्न सैन्य शक्ति से सम्बलित ऐसे धर्मांध मुसलमान शासक थे। अकबर या दाराशिकोह जैसे शासक होते तो शायद शिवाजी का उद्भव ही नहीं हुआ होता। सैन्य शक्ति के अभाव में उन्होंने जो गुरिल्ला रणनीति को अपनाया था वह सर्वथा उपयुक्त थी। दूसरे उनकी लूटफाटों के पीछे उनका अपना निजी स्वार्थ नहीं था। एश्वर्य और विलास की प्राप्ति हेतु उन्होंने यह नहीं किया था। उनके सामने एक नए राष्ट्र निर्माण का आह्वान था। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरूने शिवाजी के सन्दर्भ में अपनी टिप्पणी देते हुए लिखा है - "But I was his son, Shivaji, born in 1627, who became the glory of Marathas and the terror of the empire when only a boy of Nineteen, he started on his predatory career and captured his first fort near Poona. He was a gallant captain and an ideal guerilla leader, and he built up a bank of brave and hardend mountaineers, who were devoted to him. With their help he captured many forts and gave Aurangzeb commanders a bad time....Shivaji is loved and adored by the people their. He represented a religious nationalist of the kind I have allready mentioned. The Economic background and general misery of the people prepared the soil; and two great Marathi poets, Ramdas and Tukaram nurtured this soil by their poetry and teaching. The Maratha people thus gained in consciousness and the unity, and just then came a brilliant captain to lead them to victory."[41]

ऐसी एक साहित्यिक मान्यता प्रवर्तित है कि कृति की श्रेष्ठता का मुख्य मानदण्ड वस्तु की श्रेष्ठता भी है। गुप्तजी की प्रसिद्ध पंक्तियाँ इसी दिशा की और संकेत करती है-

> ''राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।
> कोई कवि बन जाये सहज संभाव्य है।।''[42]

महाराजा छत्रपति शिवाजी भारतीय इतिहास का एक गौरवमय अध्याय है। अतः उन पर आद्धृत रचना उपर्युक्त न्याय से आधी श्रेष्ठ तो वैसे ही हो जाती है। शेष आधी श्रेष्ठता की पूर्ति डॉ. मिश्रने अपनी औपन्यासिक कला तथा कठिन परिश्रम अध्ययन से की है। आंग्ल विचारक पालग्रेव का कथन है कि ऐतिहासिक उपन्यास लिखना अत्यन्त कठिन तथा परिश्रम साध्य कार्य है।[43] कहना न होगा कि यह कठिन और दुष्कर कार्य डॉ. मिश्र सम्पन्न करने में सफल रहे हैं।

प्रस्तुत उपन्यास प्रणयन हेतु उन्होंने एतद् विषयक ऐतिहासिक ग्रन्थों की तो छानबीन की ही है, इनके अतिरिक्त महाराज शिवाजी पर आधारित अन्य साहित्यिक कृतियों का भी अनुशीलन किया है। इन रचनाओं में आचार्य चतुरसेन शास्त्री कृत 'सहयाद्री की चट्टान' सत्यशुकुन कृत 'छत्रपति शिवाजी' कृष्णकांत मालवीय कृत 'सिंहगढ विजय' बलभद्रसिंह कृत 'महाराष्ट्र उदय' गंगाप्रसाद कृत 'पूना में हलचल' आदि मुख्य है।

प्रस्तुत उपन्यास के कथानक को मुख्यतया तीन विभागों में आबंटित कर सकते हैं । (क) शिवाजी के जन्म पूर्व की कथा, (ख) शिवाजी का जन्म तथा उनका अभ्युदय (ग) शिवाजी का संघर्ष तथा उनका निधन।

(क) शिवाजी के जन्म पूर्व की कथा

उपन्यास का प्रारंभ ही एक भयंकर अकाल से होता है। दुर्भिक्ष के कारण प्रजा की हालत अत्यन्त दयनीय है। उस पर शासक बड़े क्रूर हैं। वे प्रजा के साथ किसी प्रकार की रियायत नहीं करते। शिवाजी के पिता के पिता मालोजी माँ तुलजा भवानी और भोले बाबा शिवशंकर के भक्त हैं। एक बार शंकर भगवान उनके स्वप्न में आते हैं और किसी गुप्त खजाने का संकेत दे जाते हैं। मालोजी को यह गुप्त खजाना मिल जाता है। इस खजाने से कुछ सैन्य शक्ति का प्रबंध कर वे एक छोटे से राज्य की स्थापना करते हैं। अपनी प्रजा को दुर्भिक्ष से बचाने के लिए वे माँ तुलजा भवानी के पास जाते हैं। रात्रि बेला में माँ भवानी मालोजी को एक जलाशय के निर्माण का आदेश देती है। खजाने की धनराशि से मालोजी जलाशय का निर्माण शुरु करते हैं। उस समय ईसाई पादरी फादर रेवरेंड भी आते हैं। वे भी उनको आशीर्वाद देते हैं। जलाशय का कार्य पूर्ण होते ही मूसलधार वर्षा होती है। मालोजी शंकर भगवान की पूजा का आयोजन करवाते हैं। उस समय पुनः भगवान शंकर मालोजी को स्वप्न दर्शन देते हैं। स्वप्न में वे मालोजी से कहते हैं कि उनका अंशावतार उनके पौत्र के

रूप में उनके यहाँ जन्म ले रहा है जो अत्याचारी-विधर्मियों का नाश कर दक्षिण में मराठा राज्य की स्थापना करेगा। स्वप्न की यह बात मालोजी अपनी पत्नी से करते हैं। मालोजी के निधन के बाद उनके पुत्र शाहजी मालोजी के राज्य का थोड़ा विस्तार करते हैं पर बाद में बिजापुर के शासक की सेवा में अपना शेष जीवन व्यतीत करते हैं।

(ख) शिवाजी का जन्म तथा उनका अभ्युदय :

मृत्यु के पूर्व मालोजी की पत्नी वह स्वप्न वाली बात अपनी पुत्रवधू जीजाबाई से करती है। जीजाबाई उस समय गर्भवती थी, अतः पूर्ण संतोष एवं विश्वास के साथ वे अपने प्राण त्यागती हैं। नौं महीने पूरे होने के बाद जीजाबाई एक अत्यन्त तेजस्वी पुत्ररत्न को जन्म देती है।

दादाजी कोंडदेव मालोजी के मित्र और सलाहकार थे। उनको इसी अवसर की प्रतीक्षा थी। यह शुभ समाचार शाहजी को पहुँचाया जाता है परन्तु पुत्र जन्मोत्सव के शुभ प्रसंग पर भी वे नहीं आते। ईसाई पादरी फादर स्मिथ ने दादा कोंडदेव को पहले से ही बता दिया था, क्योंकि पिछले कुछ वर्षों से शाहजी राग-रंग और विलासिता के पंक में डूबते जा रहे थे। उन्होंने किसी रूपयौवना से दूसरा विवाह भी रचा लिया था। जीजाबाई और दादा कोंडदेव इस मंगल प्रसंग पर सभी धर्म के प्रतिनिधियों को आमंत्रित करते हैं। उस समय ज्योतिषी एक विचित्र बात बताते हैं कि बालक में एक ही साथ सम्राट और संन्यासी के योग हैं। इस बात को सुनकर अन्य लोग चिन्तित होते हैं किन्तु दादा कोंडदेव बहुत प्रसन्न होते हैं क्योंकि वे उनके मर्म को समझ जाते हैं। उन्हें विश्वास हो जाता है कि नवजात शिशु मालोजी के स्वप्नानुसार भगवान शिव का अंशावतार ही हैं।

शिवाजी के व्यक्तित्व के निर्माण में तीन व्यक्तियों का योगदान है - दादाजी कोंडदेव, माता जीजाबाई तथा समर्थ गुरु रामदास। दादाजी कोंडदेव जहाँ उनके व्यावहारिक गुरु हैं वहाँ समर्थ गुरु रामदास उनके आध्यात्मिक गुरु हैं। माता जीजाबाई ने शैशव काल में ही बालक शिवाजी को रामायण-महाभारत की कथाएँ सुनाकर उनमें वीरता, धीरता और उदारता जैसे गुणों को पल्लवित किया था। दादा कोंडदेव उनको राजनीति तथा युद्धकला में प्रशिक्षित करते हैं। समर्थ गुरु रामदास शिवाजी में न केवल आध्यात्मिक शक्ति को अंकुरित करते हैं अपितु अपनी समस्त आध्यात्मिक शक्ति शिवाजी के उन्नयन में लगा देते हैं।

जब जीजाबाई शाहजी के दूसरे विवाह से अवगत होती है, तब वह अपना

समग्र ध्यान शिवाजी को पूर्णरूपेण शिक्षित करने में लगा लेती है। शिवाजी के जन्म को एक ही महीना हुआ था और माता जीजाबाई तुलजा भवानी के दर्शनों को चल पड़ती है। तुलजा भवानी मंदिर का पुजारी भी जीजाबाई को प्रोत्साहित करता है। अपने यहाँ कहावत है कि पुत्र के लक्षण पालने में से दृष्टिगोचर होते हैं। इस सन्दर्भ में शिवाजी के बचपन की एक घटना उल्लेखनीय कही जा सकती है। एक बार दादा कोंडदेव बालक शिवाजी को कुछ खिलौनों के बीच छोड़ देते हैं। तब वह बालक अन्य खिलौनों को छोड़कर केवल तलवार को पकड़ लेता है। दादा कोंडदेव को तभी प्रतीति हो जाती है कि आगे चलकर यह बालक अवश्य एक वीर पुरुष बनेगा। शिवाजी जब कुछ ही महीनों के थे तब एक साँप को भी पकड़ने की चेष्टा करते हैं।

शिवाजी के पिता शाहजी जीजाबाई को शिवनेर का किला खाली करके पूना जाने का आदेश देते हैं, किन्तु जीजाबाई साफ मना करवा देती है कि जब तक शिवा अपना दायित्व उठा लेने लायक नहीं हो जाता, तब तक वे शिवनेर के किले में ही रहेंगी।

अतः शिवाजी जब सोलह वर्ष के हो जाते हैं, तब माता जीजाबाई उनको लेकर पूना चली जाती है। तब तक पूना की गणना बड़े नगरों में नहीं होती थी। घने जंगलों से घिरा हुआ वह एक सामान्य स्थान था। आसपास के लोग जंगल के भेड़ियों से बहुत त्रस्त थे। शिवाजी भेड़ियों के त्रास से उन्हें मुक्ति दिलाते हैं। यहाँ से उनके साहसपूर्ण जीवन का प्रारंभ होता है।अपने जैसे कुछ उत्साही युवकों की टोली बनाकर 17 साल की तरुण अवस्था में वे तोरण का किला फतह करते हैं। तोरण के बाद वे रायगढ़ के किले को सर करते हैं। इस किले को फतह करने में उनका एक वीर साथी वीरगति को प्राप्त हो जाता है। शिवाजी के मुँह से सहसा निकल पड़ता है - 'गढ़ आला पर सिंह गेला।' तब से इस। प्रकार के प्रसंगो के लिए यह उक्ति प्रचलित हो जाती है और एक कहावत का रूप ले लेती है।

इन्हीं दिनों में दादा कोंडदेव की मृत्यु हो जाती है। रायगढ़ के बाद चढ़ाइयों एक सिलसिला शुरु हो जाता है। कोंकण, भिवण्डी, चोल, ताले, लोहगढ़ आदि प्रदेशों को शिवाजी जीत लेते हैं और उन पर अपना अधिकार स्थापित करते हैं। जैसे-जैसे नये प्रदेश उनके अधिकार क्षेत्र में आते जाते हैं, वे अपनी सैन्य-शक्ति को भी बढ़ाते जाते हैं। उन्हीं दिनों में वे अपने पिता शाहजी को भी बंधन-मुक्त कराते हैं।[44]

(ग) शिवाजी का संघर्ष तथा उनका निधन

कुछ ही समय में दक्षिण में शिवाजी एक बहुत बड़ी शक्ति बनकर उभरते है। मुसलमान तथा मुघलशासक उनके नाम से थरथर कांपने लगते हैं। शिवाजी के मुसलमानों पर इस आंतक का वर्णन भूषण के काव्य में मिलता है। उस समय अहमदनगर में आदिलशाही सरकार थी। अहमदनगर का मुसलमान शासक शिवाजी को पकड़ने के लिए अफजल खां नामक एक मुसलमान सरदार को भेजता है। अफजल खां शिवाजी को धोखे से मारना चाहता था। शिवाजी को इस बात का पता चल जाता है। अतः अपनी समयसूचकता तथा चपलता से हाथों में छिपाके रखे बघनखे से शिवाजी अफजल खां की हत्या कर देते हैं। अफजलखां का अंगरक्षक सैयद शिवाजी पर फिरंग छोड़ देता है, किन्तु लोहे के टोप के कारण शिवाजी बच जाते हैं। जीऊ मेहता सैयद का हाथ काट डालते है और संभाजी अफजल खां को उठाने वाले कहारों के पैर काट डालते हैं। अफजल खां की मृत्यु से अहमदनगर का शासक और भी डर जाता है।

अफजल खां के वध से समर्थ गुरु रामदास को अतीव प्रसन्नता होती है और वे शिवाजी के इस युद्ध को धर्मयुद्ध बताते हुए शिवाजी द्वारा उठाई हुई कुछ शंकाओ का समाधान करते हैं। यथा - "गीता में कृष्णने एक जगह कहा है कि योग और संन्यास में अन्तर बाल-बुद्धि वाले देखते हैं, पंडित नहीं। इसी तरह मैं कहूँगा कि कर्म और भाग्य में कोई अन्तर है नहीं।अन्तर इतना है कि एक कार्य है दूसरा कारण। एक मूल है दूसरा शीर्ष। एक बीज है दूसरा वृक्ष। कर्म ही भाग्य बनाता है। कर्म का भाग्य से विरोध नहीं, वह भाग्य का विधायक है....... कर्म करते जाओ, भाग्य स्वयं तुम्हारे पीछे दौड़ता आएगा।"[45]

अफजल खां के वध के उपरांत उसके पुत्र को सेना की एक टुकड़ी के साथ भेजा जाता है, किन्तु वह भी बुरी तरह से असफल रहता है। इतना ही नहीं अहमदनगर का पन्हाला का महत्वपूर्ण किला भी शिवाजी के कब्जे में चला जाता है। शिवाजी की इस बढ़ती शक्ति से अहमदनगर का शासक चिन्तित रहने लगता है। अतः उसे एक झटके से खत्म करने के लिए सलामत खां नामक एक सरदार को भारी सेना के साथ भेजा जाता है। शिवाजी के पास कोई बड़ी सेना तो थी ही नहीं, अतः वे गुरिल्ला युद्ध करते है, किन्तु यहाँ युद्ध खुले मैदान का था। शिवाजी घिर जाते हैं, किन्तु बाजीप्रभु नामक उनके खास विश्वसनीय बहादुर तथा दिलेर साथी की सहायता से शिवाजी किसी तरह वहाँ से भाग निकलने में सफल हो जाते हैं। बाजीप्रभु अपनी जान पर खेल जाते हैं पर इस मराठा सूर्य को असमय डूबने से बचा लेते हैं।

दक्षिण में शिवाजी एक बड़ी शक्ति के रूप में उभर रहे थे और हिन्दू पर बादशाही स्थापित कर रहे थे, इससे मुघल बादशाह औरंगजेब भी बहुत परेशान था। अतः शिवाजी की उदीयमान शक्ति को कुचल देने हेतु एक बहुत बड़ी सेना दक्खन को रवाना होती है। औरंगजेब का मामा साइस्तखां इस सेना का सरदार था। साइस्तखां को अपनी शक्ति पर बड़ा घमंड था। युद्ध में उसकी ऊँगलियाँ कट जाती हैं। उसका बेटा भी युद्ध में मर जाता है। वह खुद किसी तरह जान बचाकर भाग निकलता है।

अंततः औरंगजेब राजा जयसिंह को इस कार्य हेतु भेजता है। राजा जयसिंह पुरंदर के किले को घेर लेता है। मोरारबाजी शिवाजी के एक अनन्य विश्वसनीय साथी थे। इस युद्ध में वे शहीद हो जाते हैं। शिवाजी बहुत चिन्तित होते हैं। बचने का कोई उपाय नहीं था मराठा सरदारों का हौंसला भी पस्त हो रहा था। ऐसे समय में माता जीजाबाई शिवाजी की सहायता हेतु आती हैं और उन्हें राजनीति का यह पाठ पढ़ाती हैं कि यदि शत्रु अधिक प्रबल हो तो युद्ध द्वारा नहीं, अपितु संधि और शांति से उसे वश में करने का उपक्रम करना चाहिए।

इसके उपरांत घटनाओं का सिलसिला बहुत तेजी से घुमता है। डॉ. इला मिस्त्री ने इन घटनाओं का संक्षेपण करते हुए लिखा है - ''राजा जयसिंह से सन्धि, संभाजी को उनके साथ भेजना, फिर शिवाजी का औरंगजेब के दरबार में उपस्थित होना, शिवाजी का अपमान, शिवाजी का वहाँ से उलटे पैर लौटना, पिता-पुत्र को फौलाद खां के पहरे में नजरकेद, वहाँ से फल के टोकरे में निकल भागना, संभाजी को मथुरा में केशोपंत के यहाँ छोड़ना, संन्यासी वेश में जगन्नाथपुरी होते हुए कुछ महीनों के उपरांत शिवाजी का अकेले लौटना, महल में यह प्रचारित करना कि संभाजी नहीं रहे, बाद में संभाजी का सकुशल आना, विमलेश पंत को विश्वेश्वर की नगरी काशी में गगा भट्ट के लिए भेजना, गगा भट्ट द्वारा शिवाजी के राज्याभिषेक की विधि का शास्त्रोक्त ढंग से सम्पन्न होना, जीजाबाई की मृत्यु, शिवाजी के राज्य में पुनः दुर्भिक्ष का पड़ना, अकाल-पीड़ितों की सहायता, शिवा के मन में अहंकार का जगना, समर्थ गुरु रामदास द्वारा उसका शमन, अंत में इक्यावन वर्ष की अधपकी उम्र में 1980 में अपनी ही पत्नी सोयराबाई द्वारा विषदान से मृत्यु । ये सारी घटनाएँ बड़े रोचक ढंग से लेखक ने संगठित की है।[46]

लेखकने शिवाजी के अंतिम समय में उनके मानसिक पश्चाताप को भी अभिव्यक्त किया है। यथा- ''पर आज जब वे किसी भीषण कुचक्र का शिकार हो असमय ही कालकलित हो रहे हैं तो उन्हें लग रहा है ठीक ही कहा था उस बूढे

पादरीने । अगर उन्होंने उसकी बात पर ध्यान दिया होता तो...... ठीक है कि उन्होंने नारी को सदा पूज्या माना। अपनी पत्नियों के अलावा सभी को मातृभाव से ही देखा, किन्तु गलती तो उन्होंने भी वहीं की जो पिता शाहजी ने......। पिता ने तो दो ही विवाह रचाएँ, उन्होंने तो चार-चार 'हे जगदम्बे!' मरणासन्न महाराज के मुख से अनायास निकला, 'कैसी गलती बन गई मेरे द्वारा तुम्हारे होते हुए भी?' खैर, ठीक ही फल मिला मेरे कर्म का। प्रायश्चित हो आया मेरे पाप का । हे जगदम्बे। हे भवानी! माँ......तुलजे....... तुलजे!''[47]

उपर्युक्त कथन में जिस पादरी का संकेत है, वे है फादर स्मिथ । फादर स्मिथ ने शिवाजी को कभी चेतावनी दी थी। दूसरा विवाह कभी मत करना क्योंकि, ''औरत शक्ति है पावर, पर वही औरत राक्षसी भी..... मेरा मतलब 'डेवील' से कुछ कम नहीं होती।''[48] प्रस्तुत उपन्यास की समीक्षा करते हुए डॉ. इला मिस्त्री ने लिखा है - ''इस प्रकार 'पहला सूरज' एक ऐतिहासिक उपन्यास है। उसकी सृष्टि के लिए लेखक ने पुरातन स्त्रोत, आधुनिक इतिहासकार यदुनाथ सरकार की कृतियों तथा शिवाजी के दूसरे बेटे राजाराम के राज्यकाल में एक सभासद द्वारा विरचित 'सभासद' नामक गेय वीरगाथात्मक रचना का उपयोग किया है। यहाँ केवल इतिहास का री-राइटिंग नहीं है। लेखक स्वयं तुलजा भवानी के भक्त हैं और साकार-विग्रह-भक्ति तथा दैवी चमत्कारों पर उनकी आस्था है। अतः ऐसी ही कुछ चमत्कारिक घटनाएँ मिलती है।''[49]

जहाँ तक उपन्यास की भाषिक संरचना का सवाल है उसकी भाषा विषय और परिवेश के अनुरूप है। इसमें संस्कृत, अंग्रेजी तथा उर्दू शब्दों के प्रयोग मिलते है। क्योंकि शिवाजी के समय में जहाँ एक तरफ मुसलमानों का राज्य था वहाँ दूसरी तरफ अंग्रेजों का आगमन हो चुका था। उसमें एक ईसाई पादरी स्मिथ का चरित्र भी आया है। संस्कृत शब्दों में संज्ञाशून्य, समन्वयात्मक, हरितिमा, नारसिंही, अस्ताचलगामी, मरणासन्न, मार्तण्ड, यज्ञाग्नि, ध्यानावस्थित, निर्धूम ज्योति, शुभ्र वसना आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है।[50] तो दूसरी तरफ मुहाल, हुजूम, निज़ाम, नाबालिग, तिजारत, आदमखोर, आफताब, मजहबपसन्द, नेस्तनाबूद, बदौलत, इबादत, महरूम जैसे अरबी-फारसी या उर्दू के शब्द मिलते हैं।[51]

ईसाई पादरी स्मिथ के कारण निम्नलिखित अंग्रेजी के शब्द भी पाएँ जाते है। जैसे रि-राइट, फील्ड-इरिगेट, रीलिजियस, इम्पोज, प्रीचर्स, ह्यूमेनिटी, स्लेवरी, एक्सप्लायटेशन, डोमिसायल, कनफिडंशियल, प्रोफेसी, ब्लेसिंग, प्रूफ, कैण्डिल आदि आदि।[52]

अन्य उपन्यासों की तरह मिश्रजी ने प्रस्तुत उपन्यास में भी कहावतों और मुहावरों का यथेष्ट प्रयोग किया है। यहाँ आम के आम गुठली के दाम, हाथी घोड़े बह गए गधा कहे कितना पानी?, न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी, तरबूजे को देखकर तरबूजा रंग बदलता है, सांप के निकल जाने के बाद लकीर पीटने से क्या होता है? जैसी लोकप्रचलित कहावतों का प्रयोग भी हुआ है।[53] भाषा की मुहावरेदानी भी यहाँ बरकरार है । यथा-नक चढे होना, सिर कलम कर देना, दाँत खट्टे कर देना, कलेजा मुँह को आ जाना, दूध की मक्खी होना, हथियार डाल देना, आँखों की किरकिरी होना, दूध की लाज रखना आदि-आदि।[54]

मिश्रजी की भाषा विशिष्ट प्रकार के विशेषणों से मंडित है। कुछेक विशेषणों का उल्लेख यहाँ कर रहे है - जैसे अमृतोपम मिष्टान्न, कृष्णवर्णी अष्टभुजा प्रस्तर मूर्ति, बेधती आंखे, लड़खड़ाती आवाज, मजहबी इन्सान, खुराफाती दिमाग आदि-आदि।[55]

प्रस्तुत उपन्यास छत्रपति शिवाजी से सम्बद्ध है और उनके चरित्र गठन में समर्थ गुरुस्वामी रामदास, दादा कोंडदेव, माता जीजाबाई तथा ईसाई पादरी स्मिथ आदि का योगदान रहा है। अतः उपन्यास में यत्र तत्र सूक्तियों का मिलना स्वाभाविक ही कहा जाएगा। यहाँ केवल उदाहरण के तौर पर दो-तीन सूक्तियों का उल्लेख कर रहे है - (01) तन, मन और आत्मा तीनों का संस्कार करो तो व्यक्ति संस्कारित होता है, जब व्यक्ति संस्कारित होता है तो समाज समृद्ध होता है और समाज जब समृद्ध होता है तो राष्ट्र काल पुरुष की तरह विराट और महान बन जाता है। (02) साधारण मनुष्य अपने कर्मों द्वारा अपना भाग्य गढ़ता है, साधक और सिद्ध अपने कर्मों द्वारा जगत का भाग्य गढ़ते हैं - वे व्यष्टि ही नहीं समष्टि के भी कल्याण का कारण बनते हैं । (03) हर रात के बाद सवेरा होता है। ऐसा कोई अंधकार नहीं घिरा जिसे प्रकाश ने परास्त न किया हो। मनुष्य का कर्तव्य है कि वह हाथ-पर-हाथ धरकर न बैठा रहे, प्रत्युत् अनुकूल समय के स्वागत को प्रस्तुत रहे।[56]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भाषिक संरचना की दृष्टि से प्रस्तुत उपन्यास की भाषा सहज, सरल, वस्तु के अनुरूप तथा सम्पन्न है।

पीताम्बरा

'पीताम्बरा' डॉ. मिश्र का एक जीवनीपरक ऐतिहासिक - सांस्कृतिक उपन्यास है। इसके पूर्व अमृतलाल नागर तुलसीदास और सूरदास पर क्रमशः 'मानस के हंस' तथा 'खंजन नयन' नामक उपन्यास लिख चुके हैं। अतः डॉ. मिश्र का यह उपन्यास

उसी श्रेणी में आ सकता है। क्योंकि उसमें उन्होंने भारतीय साहित्य में विश्रुत प्रेमदिवानी मीरा के जीवन को चित्रित किया है। इसके लेखन में लेखक ने शोधपरक अनुसंधान किए हैं। ग्रंथालयों तथा शोध - संस्थानो में जाकर उन्होंने सामग्री को एकत्रित किया है। कश्मीर की ललनदेई तथा कर्णाटक की महादेवी अक्का की भाँति मीरा भी एक प्रेमदिवानी कवयित्री है। मीरा के दादाजी राव दूदाने उनमें बचपन से ही कृष्ण-भक्ति के संस्कारों का सिंचन किया था। राव दूदा की यह हार्दिक इच्छा थी कि उनके परिवार में कोई कृष्ण-भक्त पैदा हो। अपने छोटे पुत्र रतनसिंह से राव दूदा वचन भरवा लेते हैं कि अपनी पहली संतान को वे कृष्णार्पित कर देंगे। यथा - ''तो वचन दो कि तुम्हारी जो भी पहली संतान होगी उसके अन्दर तुम इसी बीज का बपन उसके बाल्यकाल में ही कर दोगे उसके होश सम्हालते न सम्हालते ही। यही प्रेम और भक्ति भाव के बीज का बपन।''[57]

उपर्युक्त विवेचन में स्पष्ट किया गया है कि 'पीताम्बरा' के लेखन के पूर्व लेखक एक सुव्यवस्थित वैज्ञानिक अनुसंधानपरक यात्रा से गुजरे हैं। अपनी अनुसंधान यात्रा के तहत वे मीरा के जन्म-स्थान को 'कुड़की' बताते हैं और हिन्दी साहित्य के विद्वानों तथा साहित्यकों के इतिहास - लेखन पर फब्ती कसते हुए वे लिखते हैं - ''हँसी आती है कि मीरा के सम्बन्ध में कितने स्वयंभू अधिकारी और अधिकारिणी पैदा हो गए हैं पर वे अभी तक मीरा की जन्मतिथि जन्म स्थान और मृत्यु तिथि के सम्बन्ध में भी एकमत नहीं हुए हैं।..... आश्चर्यचकित होना हो तो होइये पर अभी तक ऐसे लोग हैं जो इस बात को लेकर विवाह खड़ा करते हैं कि मीरा का जन्म मेड़ता में हुआ या कुड़की में ।''[58] परन्तु ऐसा लगता है कि लेखक यह बात अपने अति उत्साह में लिख गए हैं क्योंकि हिन्दी साहित्य के कई इतिहासकारों ने मीरा का जन्म-स्थान कुड़की ही बताया है, मेड़ता नहीं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में मीरा के जन्म स्थान को 'कुड़की' के स्थान पर चोकड़ी हो गया हो यह संभव है, परन्तु -मेड़ता तो नहीं ही लिखा है।[59] डॉ नगेन्द्र ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस सन्दर्भ में स्पष्टतः लिखा है - ''मीरा के जन्म-स्थान और वंश के सम्बन्ध में कोई मतभेद नहीं है। यह मान्यता सर्वसम्मत है कि उनका जन्म 'मेड़ता' के समीपवर्ती गाँव कुड़की में राठोर वंश की मेड़तिया शाखा में हुआ था।''[60] इनके अतिरिक्त डॉ. शिवलोचन पांडेय, डॉ. रामचन्द्र तिवारी , डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त तथा डॉ. पारुकांत देसाई प्रभृति हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों ने मीरा के जन्म-स्थल को मेड़ता नहीं अपितु कुड़की ही बताया है।[61]

मीरा के सन्दर्भ में एक और तथ्य भी है जो डॉ. मिश्र नजरअंदाज कर गए

हैं। अपने जीवन के आखिरी चरण में मीरा गुजरात आई थी और उनकी मृत्यु भी द्वारकाधीश के श्रीचरणों में हुई थी, यह तो डॉ. मिश्र ने निरूपित किया है किन्तु गुजरात में आने के उपरांत मीराबाई ने गुजराती भाषा में भी पदों और भजनों की रचना की थी। इसका कोई उल्लेख उपन्यास में नहीं किया गया है। हिन्दी तथा गुजराती दोनों भाषाओं के विद्वान मीराबाई को अपनी-अपनी भाषा की कवयित्री मानते हैं, ऐसी स्थिति में इतने बड़े तथ्य को अनजाना कर जाना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। इसे क्या कहा जाय? लापरवाही या बौद्धिक चालाकी?

अकबर और मीरा के सन्दर्भ में भी एक छोटी सी तथ्यपरक क्षति रह गई है। मिश्रजी इस सन्दर्भ में अपनी टिप्पणी देते हैं - ''इसी प्रकार कई लोगों द्वारा प्रचारित अकबर और मीरा की भेंट को मैंने नकार दिया है। अकबर का जन्म 1542 ई. में हुआ था। और मीरा का जन्म 1504 ई. में। इस तरह अकबर मीरा से चालीस वर्ष छोटे है। जिस समय मीरा की मृत्यु हुई उस समय अकबर मात्र छः वर्ष के थे। ऐसी स्थिति में किधर से संभव है कि मीरा के स्वर-माधुर्य से आकृष्ठ हो अकबर का तानसेन के साथ मीरा के दर्शन को जाना?''[62] अपने अनुसंधान के उपरांत डॉ. मिश्र ने मीरा की जन्म-तिथि 1504 ई. और मृत्यु-तिथि 1550 ई. निश्चित की है। अब इन तिथियों को ही देखा जाय तो अकबर मीरा से 38 वर्ष छोटे होते हैं न कि चालीस वर्ष, और मीरा की मृत्यु के समय अकबर छः वर्ष के नहीं, अपितु 8 वर्ष के होने चाहिए। यद्यपि इससे डॉ. मिश्र की धारणा पर कोई असर नहीं पड़ता तथापि इसे क्षति तो मानना ही पड़ेगा। एक ओर बड़ी महती और गम्भीर भूल डॉ. मिश्र मराठी संत तुकाराम के सन्दर्भ में कर बेठे हैं कि मीरा आत्मचिंतन में लीन है और उसमें वह अपनी पूर्व परम्परा के भक्तों और आचार्यों का स्मरण कर रही है। इसमें तुकाराम का नाम भी आता है। अब तुकाराम की जन्म-तिथि है 1608 ई.। इस प्रकार जन्म उनका मीराबाई के 58 वर्ष बाद हुआ था। अतः यह भला कैसे संभव हो सकता है कि 58 वर्ष बाद जिनका जन्म हुआ है ऐसे संत तुकाराम का नाम मीराबाई की जिह्वा पर आता है।[63]

जीवनीपरक ऐतिहासिक उपन्यास के लेखन में लेखक को अत्यधिक सावधानी बरतनी चाहिए, और विशेषतः तब जब वे दूसरे विद्वानो के अनुसंधानों और शोध कार्यों की खिल्ली उड़ा रहे हों।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने मीराबाई और गोस्वामी तुलसीदास के बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ था उसका उल्लेख किया है। इस सन्दर्भ में लेखक भूमिका में लिखते है - ''मीरा और गोस्वामीजी के मध्य पत्राचार की बात को कई लोगों ने स्वीकारा

है और कई लोगों ने इसे नकारा भी है। मैंने इसे स्वीकारा है। मीरा का जन्म 1561 संवत में और गोस्वामी तुलसीदासजी का जन्म 1554 संवत में हुआ था, अतः तुलसी मीरा से सात वर्ष बड़े ठहरते हैं और मीरा के प्रायः समकालीन होते हैं, अतः इनके मध्य पत्राचार सर्वथा संभव है।''[64] प्रस्तुत उपन्यास का रूपबन्ध महाकाव्यात्मक है। मीरा के समग्र जीवन को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम भाग में मीरा का जन्म, बचपन तथा किशोरवस्था को रख सकते हैं। द्वितीय अनुभाग में मीरा का विवाह, मीरा के पति भोजराज की मृत्यु तथा उसके उपरांत उनका मुक्ति चेतना के प्रति संघर्ष प्रभृति को समेकित किया जा सकता है। तृतीय भाग में मीरा का पुनः मेड़ता आना, मथुरा तथा वृंदावन की यात्रा, द्वारिका गमन, वहीं उनका प्राण त्याग इत्यादि घटनाओं को अग्रसरित किया गया है।

मीरा का जन्म 1504 ई. में रतनसिंह ठाकोर के यहाँ मेड़ता के पास कुड़की नामक, स्थान पर हुआ था। उनकी माता का नाम उवँरीबाई था। शैशव से ही मीरा को कृष्ण-भक्ति के संस्कार दिये गए थे। शैशव अवस्था में घोड़ी पर बैठे एक दुल्हे को देखकर मीरा ने अपनी माता उर्वरीबाई से पूछा था कि उसका दुल्हा कौन है? तब माँ ने मूरली मनोहर के गुड़्डे के देतेहुए कहा था कि यही तेरा दुल्हा है। तभी से मीरा मूरली मनोहर को ही अपना पति मानने लगी थी। मीरा में काव्य-प्रतिभा शैशव काल से ही पाई जाती है। श्रीकृष्ण के प्रेम में दिवानी होकर प्रेम-पूर्ण पदों की रचना करने लगी थी। बचपन में मीरा ने विद्यापति का पद सुना था- ''लोचन घायल पे घायल हरि नहि आयल रे।'' इस पद में 'पे घायल हरि' के स्थान पर मीरा 'गिरिधर गोपाल' जोड़कर ''लोचन घायल गिरिधर गोपाल नहि आयल रे'' कर दिया था तब राव दूदा को बड़ा आश्चर्य हुआ था कि ऐसा करते हुए मीराने मात्राओं का भी ध्यान रखा था।[65]

मीरा तो अपने गिरिधर गोपाल को वर चुकी थी। अतः किसी अन्य से विवाह करना नहीं चाहती थी। किन्तु किन्हीं राजनीतिक कारणों से मीरा की अनिच्छा के बावजूद उसका विवाह चितोड़ के राणा भोजराज से करवा दिया जाता है। भोजराज राणा सांगा के अग्रजे पुत्र है। वह तपेदिक (टी.बी.) के मरीज थे। उन दिनो तपेदिक को राजयक्ष्मा कहा जाता था। यह रोग असाध्य माना जाता था। अतः विवाह के कुछ वर्ष बाद भोजराज की मृत्यु हो जाती है। भोजराज की मृत्यु के बाद मीरा का ज्यादात्तर समय कृष्ण-भक्ति में व्यतीत होता है। भक्ति-भावना से प्रेरित होकर मीरा साधु-संतो में बैठकर स्व रचित पदों और भजनों को गाती हैं। जिन्हें सुनने के लिए साधारण जनता टूट पड़ती है। मीरा का देवर विक्रमसिंह इसे राजघराने की

कुलमर्यादा के विपरीत समझता है। उसे मीराबाई की यह साधु-संगत अच्छी नहीं लगती। अतः पहले मीराबाई को समझाने की चेष्टा करता है परन्तु मीराबाई साधुओं की संगत छोड़ती नहीं है। अतः क्रोधित होकर राणा मीराबाई को मरवाने के लिए कई बार षड़यंत्र रचता है। किन्तु मीराबाई का बाल बाँका नहीं होता। प्रत्येक बार किसी चमत्कारिक ढंग से मीराबाई की रक्षा हो जाती है।

उसके बाद मीराबाई गोस्वामी तुलसीदास की सलाह लेती है। तुलसीदास का उत्तर सांकेतिक एवं काव्यमय था- ''जाके प्रिय न रामवैदेही तजिये ताको कोटि बैरी सम जदपि परम स्नेही।'' अतः मीरा चित्तोड़ को छोड़ देती है। मेड़ता पर आक्रमण होता है तो वह मथुरा-वृंदावन की और निकल जाती है। वहाँ से गुजरात में द्वारिका नगरी पहुँचती है। मीरा कुछ समय वहाँ रहती है और अंततः वहीं पर अपने प्राणों को त्यागती हैं।

मुख्य कथा के साथ अनेक प्रासंगिक कथाएं भी जुड़कर उपन्यास को एक महाकाव्यात्मक रूप प्रदान करती हैं। लेखक ने बड़ी कुशलता और संज्ञानता के साथ तत्कालीन सांस्कृतिक चेतना को उकेरा है।

'मीराबाई' नाम को लेकर भी विद्वानों में कई मतमतांतर प्रचलित है। किन्तु लेखक ने इस सन्दर्भ में अपना मत रखा है। उपन्यास में मीरा का नामकरण राव दूदा करते हैं। इस सन्दर्भ में वे कहते हैं - ''बहुत चिंतन के पश्चात् मुझे एक नाम सूझा-मीरा। आप जानते है देवभाषा में मीरा का अर्थ जलाशय होता है। हमारी पुत्री भी किसी जलाशय के स्वच्छ स्फटिक - से सलिल की तरह है। मेरी धारणा और आकांक्षा है कि मेरी पौत्री का बहिरंग जितना स्वच्छ है, उसका अंतरंग भी, उसका हृदय भी उतना ही आकर्षक, निष्कलुष और स्फटिक सदृश सलिल-सा ही स्वच्छ हो। यही सोचकर मैंने उसका नाम मीरा रखा। आशा है आप सभी को यह नाम पसंद आएगा। इस नाम की एक और विशेषता है। इसका मेल हमारे प्रिय नगर अथवा मेड़ता से भी पूरी तरह मेल खाता है। मीरा+ता, मीरता होता है, अर्थात् जलाशय-युक्त । मीरता का अपभ्रंश रूप ही मेड़ता हो आया है। मेड़ता नगर के आसपास जलाशय ही जलाशय है। निश्चित ही इस नगर की इसी विशेषता के कारण कभी पंडित रामदासजी के सदृश किसी वेदज्ञ-संस्कृतज्ञ ने इसका नाम मीरता ही रखा होगा।[66]

उपन्यास एक कवयित्री की जीवनी पर आधारित है, अतः उसकी भाषा भी काव्योचित बाना धारण किये हुए है। उपन्यास में यह भी प्रतिपादित हुआ है कि जिस प्रकार दक्षिण में समर्थ गुरु रामदास तथा एकनाथ, तुकाराम आदि ने सांस्कृतिक

पृष्ठभूमि के निर्माण का कार्य किया, लगभग उसी प्रकार का कार्य मीराबाई ने राजस्थान और गुजरात में किया। नारी-चेतना की दृष्टि से भी इस उपन्यास का मूल्यांकन होना चाहिए।

'पीताम्बरा' उपन्यास की भाषिक-संरचना पर विचार करते हुए हम मोटे तौर पर कह सकते हैं कि प्रस्तुत उपन्यास में भी भाषा पात्र और परिवेश के अनुरूप है। कुछ विलक्षण शब्द-प्रयोग भी प्रयुक्त हुए हैं। जैसे-रक्तस्नाता, प्रस्तरपीठिका, क्षत्र, पुनर्परिणिता, मधुयामिनी, वस्त्रपेटिका, श्रुआ (कड़छुल), द्वारभंग (दरभंगा), पर्यंक (पलंग), महाभियोग, यवनमतावलम्बी आदि-आदि।[67]

मीराबाई अधिकांशतः राजस्थान में रही हैं, अतः उपन्यास के क्रिया रूपों पर भी उसका कुछ प्रभाव परिलक्षित किया जा सकता है। यथा-ढूँकना, सलटना, गल-पथ जाना, अभिलाखिए, गम गम करना, चरण पलोटना, अट नहीं पाना, छीजना, टेरना, पग जाना, पधारना आदि-आदि।[68]

अन्य उपन्यासों की तरह यहाँ भी कहावत-मुहावरों का प्रयोग यथेष्ट स्थान पर पाया जाता है। कहावतों में निम्नलिखित उल्लेखनीय है - प्रथम ग्रासे मक्षिका पातः, निरस्त पादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते, जैसे उड़ि जहाज का पंछी पुनि जहाज पर आवै, जंगल में मोर नाचा किसने देखा, हवन करते हाथ जलना, दूर के ढोल सुहावने लगते है, भैंस से गौ का काम नहीं लिया जा सकता,शेर जब तक जीवित रहता है स्वयं आखेट करता है, दूध का जला छाछ भी फूंक-फूंक कर पीता है, शीध्रता का कार्य शैतान का है, जिस लोमड़ी की पूंछ कट जाय वह औरों की पूंछ कैसे देख सकती है?[69] कहावतों की तरह मुहावरों का प्रयोग भी पाठकों का ध्यान आकर्षित करता है। निम्नलिखित मुहावरें उल्लेखनीय है। किसी की कीर्ति का यावत् चन्द्र-दिवाकर रहना, किसी की पूंछ पकड़कर आगे बढना, रेत से तेल निकालना, किसी से बीस होना, चेहरे पर सुबह की लाली का दौड़ना, किसी विषय का क-ख-ग नहीं जानना, चोंट खाए भुजंग की तरह फुफकारना, हाथ धोकर पीछे पड़ जाना आदि-आदि।[70]

लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास में कुछ नए रुपकों का प्रयोग भी किया है, जैसे-स्मृतियों के धागे, संभावनाओं के स्फुलिंग, वात्सल्य की स्रोतस्विनी, अहंकार का भुजंग, प्रतिभा की कुंडलिनी, अंधविश्वासों की अंधी गलियाँ, महत्वाकांक्षाओं की अट्टालिकाएँ, तर्क के तीर, मौन की अर्गला, पश्चाताप की गठरी, प्रताड़ना का आखेट,देहयष्टि की मल्लिका आदि-आदि।[71] नए रूपकों की तरह कुछ नए उपमानों

का प्रयोग भी मिलता है, जैसे-नेत्रों से निद्रा का दूर रहना-धधकती अग्नि से ठण्डक का दूर रहना; धवल वस्त्रित व्यक्ति का क्रोधग्नि से लाल चेहरा-सफेद चादर पर लाल गुलाब; प्रसन्नता-सुबह की लाली; मन-वल्गाहीन अश्व आदि-आदि।[72] इसी तरह आखेटक पूर्वज, असूर्यंपश्या नारी, शंखग्रीवा, क्षत्राव्युचित धैर्य, जागतिक प्रपंच, जौहरी दृष्टि, वनस्पति बोझिल पहाड़ियाँ, गंधवाही बयार जैसे कुछ नए विशेषणों का प्रयोग हुआ है।[73]

उपन्यास मीराबाई से सम्बद्ध है और मीराबाई एक सुप्रसिद्ध कृष्ण-भक्त कवयित्री है। अतः उपन्यास में सूक्तियों का आना स्वाभाविक है। यहाँ कुछेक सूक्तियों को उद्धृत करने का मोह संवरित नहीं कर पा रही हूँ-

(01) भक्ति-मार्ग का पथिक परिहास, उपहास और अपमान मान की चिंता नहीं करता। भक्ति की सही परीक्षा तो तभी होती है जब अपमान और अत्याचार को भी हँसी-हँसी झेल जाते हैं।

(02) ईश्वर द्वारा मानव को प्राप्त बहुत सारे वरदानों में एक विस्मृति का भी वरदान है। अगर यह विस्मृति का वरदान उपलब्ध नहीं हो तो मनुष्य का इस ग्रह पर जीवित रहना कठिन हो जाय।

(03) स्वाभिमान का सर्प बड़ा विषैला होता है। जब तक उस पर चोट न करो वह आपका कुछ नहीं बिगाड़ता पर जहाँ किसी आत्माभिमानरूपी भुजंग पर गलती से भी आपका पैर पड़ गया तो वह पलटकर ऐसा डंसता है कि नहीं पूछिए।[74]

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास की भाषा भी प्रत्येक दृष्टि से समृद्ध और सम्पन्न है। कथ्य और परिवेश के अनुरूप भाषा-प्रयोग लेखक की अपनी विशेषता है जिसे यहाँ भी देखा जा सकता है।

देख कबीरा रोया

'देख कबीरा रोया' यह डॉ. भगवतीशरण मिश्र का एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इधर उपन्यासों की एक अलग कोटि पर भी विमर्श चल रहा है - जीवनीपरक उपन्यास। प्रस्तुत उपन्यास को हम उस श्रेणी में भी रख सकते हैं। यह उपन्यास हिन्दी के सुप्रसिद्ध भक्त कवि कबीरदास के जीवन पर आधारित है।

कबीरदास हिन्दी की निर्गुणधारा के ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि (Major poet) हैं। उनके जन्म के सन्दर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखा है- ''इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के

प्रवाद प्रचलित हैं। कहते हैं, काशी में स्वामी रामानंद का एक भक्त ब्राह्मण था जिसकी विधवा कन्या को स्वामीजी ने पुत्रवती होने का आशीर्वाद भूल से दे दिया। फल यह हुआ कि उसे एक बालक उत्पन्न हुआ जिसे वह लहरतारा के ताल के पास फेंक आई। अली या नीरू नाम का जुलाहा उस बालक को अपने घर उठा लाया और पालने लगा। यही बालक आगे चलकर कबीरदास हुआ। कबीर का जन्मकाल जेठ सुदी पूर्णिमा सोमवार विक्रम संवत् 1456 माना जाता है। कहते हैं कि आरंभ से ही कबीर में हिन्दू भाव से भक्ति करने की प्रवृत्ति लक्षित होती थी जिसे उसके पालनेवाले माता-पिता दबा न सके। वे राम राम जपा करते थे और कभी-कभी माथे में तिलक भी लगा लेते थे। इससे सिद्ध होता है कि उस समय में स्वामी रामानंद का प्रभाव खूब बढ़ रहा था और छोटे-बड़े, ऊँच-नीच सब तृप्त हो रहे थे। अतः कबीर पर भी भक्ति का यह संस्कार बाल्यावस्था से ही पड़ने लगा हो तो कोई आश्चर्य नहीं। रामानंदजी के माहात्म्य को सुनकर कबीर के हृदय में शिष्य होने की लालसा जगी होगी। ऐसा प्रसिद्ध है कि एक दिन वे एक पहर रात रहते ही उस (पंचगंगा) घाट की सीढियों पर जा पड़े जहाँ से रामानंदजी स्नान करने के लिए उतरा करते थे। स्नान को जाते समय अँधेरे में रामानंदजी का पैर कबीर के ऊपर पड़ गया। रामानंदजी चट बोल उठे 'राम-राम कह'। कबीर ने इसी को गुरु मंत्र मान लिया और वे अपने को रामानंदजी का शिष्य कहने लगे। वे साधुओं का सत्संग भी रखते थे और जुलाहे का काम भी करते थे।''[75]

प्रस्तुत उपन्यास कबीर के जीवन पर एक प्रामाणिक और पठनीय औपन्यासिक कृति है। वैसे हिन्दी साहित्य के इतिहास तथा आलोचना ग्रंथो में कबीर पर पर्याप्त लिखा गया है। परन्तु उनके कृतित्व एवं व्यक्तित्व पर जीवनीपरक उपन्यास के रूप में कबीर पर इतने बृहत फलक पर लिखने का यह प्रथम प्रयास है। उपन्यास के फ्लैप पर उसके सन्दर्भ में बताया गया है- ''भाषिक वैशिष्ट्य एवं शिल्पगत प्रयोग का अद्भूत सम्मिश्रण जो पुस्तक को आद्यान्त सरसता एवं प्रवाह प्रदान करता है। संत कवि कबीर की रचनाओं और उनके जीवन के विविध आयामों का अत्यंत रोचक एवं जीवंत प्रस्तुतीकरण।''[76]

उपन्यास में कबीर के सन्दर्भ में एक स्थान पर लेखक की टिप्पणी है - ''अब कभी नहीं पैदा होगा इस धरती पर ऐसा आदमी। ऐसा निर्भीक, ऐसा समतावादी, ऐसा मानवता-प्रेमी, ऐसा राम-भक्त और सबसे ऊपर ऐसा आशु-कवि जिसके मुख से दोहे और साखियां, रमैनी और उलटबांसियां झरने से निकलते जल की तरह झरती थीं - निर्बाध, निर्द्वन्द्व, अनायास्, अप्रयास।''[77]

उपर्युक्त कथन में कबीर को 'राम-भक्त' का विशेषण दिया गया है, परन्तु यह सर्वविदित तथ्य है कि कबीर उस पारम्परिक रूप में राम-भक्त नहीं है, जिस पारम्परिक रूप में तुलसी आदि राम-भक्ति शाखा के सगुण भक्त कवि हैं। कबीर ने 'राम' शब्द को गुरु-मंत्र के रूप में लिया है और उनके राम दाशरथी राम न होकर घट-घट निवासी निरंजन निराकार ब्रह्म हैं।

हिन्दी साहित्य में कबीर को प्रतिष्ठित करने वाले विद्वानों में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी सर्वप्रथम आते हैं। उन्होंने कबीर के सन्दर्भ में लिखा है - ''वे सिर से पैर तक मस्तमौला, स्वभाव से फक्कड़, आदत से अक्खड़, भक्त के सामने निरीह, भेषधारी के आगे प्रचण्ड, दिल के साफ, दिमाग के दुरुस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वन्दनीय थे।''[78]

कबीर को डॉ. पारूकांत देसाई ने सर्वकालिक प्रासंगिकता का कवि कहा है। कबीर अपने समय में जितने प्रासंगिक थे साम्प्रतिक, राजनीतिक, सामाजिक परिप्रेक्ष्य में भी उतने ही प्रासंगिक है। कबीरजी के सन्दर्भ में उन्होंने लिखा है - ''बचपन से मेरे चिदाकाश में जो ध्रुवतारक की भाँति निरंतर टिमटिमाता रहा वह कवि है कबीर। मेरा प्रिय कवि जितना सरल उतना कठिन। भाषा सीधी, भाव गूढ। हिन्दी के आलोचकों ने सूर और तुलसी को साहित्य गगन के सूर्य-चन्द्र कहा है, पर इस साहित्याकाश का ध्रुव सत्य तो कबीर ही है। तुलसी 'शिवम्' को लेकर चले, सूर 'सुन्दरम्' को, परन्तु 'सत्यम्' को लेकर चलने का साहस कबीर ही जुटा पाये। सत्य कहना और सत्य करना सत्य झेलना टेढ़ी खीर है। तुलसी के सामने राम थे, सूर के पास कृष्ण कबीर के सामने विराट शून्य था.... कबीर आतम सूझ का कवि है और आतम सूझ के द्वारा ही उसे समझा जाता है। सूर और तुलसी को समझने के लिए आपको अपनी चेतना की स्लैट पर एक पृष्ठभूमि बनानी पड़ेगी, कबीर को समझने के लिए तो सब मिटाना पड़ेगा। स्लैट को कोरी-कट कर देना पड़ेगा।.... आज जब भारत पुनः एक बार विनाश और विश्रृंखलता के कगार पर आ खड़ा हुआ है। मन्दिर-मस्जिद के नाम पर हिन्दू और मुसलमान परस्पर लड़-झगड़ रहे हैं, जातिवाद फिर अपना सिर उठा रहा है, दलित फिर दला जा रहा है, तब कबीर जैसे कवि की आवश्यकता महसूस होती है जो लोगों के कानों को पकड़ उन्हें सीधा कर दे।[79]

प्रस्तुत औपन्यासिक कृति में डॉ. भगवतीशरण मिश्र ने समग्र कथा इस प्रकार रखी है कि मानो कबीरदास अपनी कहानी कह रहे हो और उसके लिए उन्होंने लेखक को माध्यम बनाया है। अतः इसमें बहुत से विवरण परवर्ती घटनाओं के भी हैं। सूरदास और तुलसीदास तो बाद के कवि है परन्तु उनका जिक्र भी आता है।

कबीरदास तो संस्कृत जानते नहीं थे परन्तु उसमें गीता, भागवत, वेद, उपनिषद, आदि की बातें भी आती हैं क्योंकि इसमें जो कबीर है वह आज के लेखक के द्वारा बात कर रहा है। अतः उसके सामने आज तक की सब घटनाएँ है। प्रारंभ में ही लेखक ने कबीर द्वारा कहलवाया है - ''मैं कबीर, जाति-पांति का पता नहीं, धर्म संप्रदाय में आस्था नहीं, जिह्वा पर लगाम नहीं, सीधे को उलटा और उलटे को सीधा कहने का आदी, उलटबासियों के लिए ख्यात-कुख्यात, आज चला हूँ लिखने अपनी आत्मकथा-अपनी राम-कहानी। आप पूछिएगा यह आत्मकथा है कि प्रेत कथा-भूत गाथा? आज सें साढ़े पाँच सौ वर्षो से भी पूर्व इस धरा-धाम को छोड़ गया यह आदमी आज अपनी आत्मकथा कैसे लिखनें लगा?......... तो यही मान लीजिए कि मेरी यह रूह, मेरी यही अमर-अनश्वर आत्मा सवार हो बैठी है बीसवीं सदी के एक मसि-जीवी लेखक पर और उसी के माध्यम से मैं अपनी पीड़ा को अभिव्यक्ति देने पर पिल पड़ा हूं।''[80]

अतः प्रस्तुत उपन्यास का कबीर आज तक की सभी घटनाओं को समेटकर चला है। वह अरबी-फारसी के साथ संस्कृत और अंग्रेजी शब्दों तक का इस्तमाल करता है। ''आपका 'डार्विन' कह गया'' या ''तुम्हारी देवभाषा में उक्ति मिलती है'' कहकर अपनी बात के साथ वह इधर की बातों को भी करता है। वह कहता है- ''अपनी धरती पर जो कुछ हो रहा है वह इतना त्रासद और पीड़ाप्रद है कि दूसरों का रोना कौन रोए? मैं पूछता हू क्या होता रहा अब तक प्रकृति के क्रोड़ में बसे ब्रह्मपुत्र के समान महान् और पावन नद से पोषित अपने असम में? क्यों वे कुछ लोग जो तुम्हारी जमीन पर शरण लेने आ गए वे आदमी नहीं रहे? तुम्हारे बंधु-बांधव, तुम्हारे देशवासी होने से वे कैसे वंचित हो गए? कोई असमी नहीं होकर बंगाली, बिहारी या बंगलादेशी हो गया तब भी आदमी होने से वो किधर रह गया? खैर, मेरी पीड़ा का सर्वाधिक कारण है कि जिस मन्दिर-मस्जिद को मैं आजीवन अनावश्यक समझता रहा उसी को लेकर इस हिन्दुस्तान, इस भारतभूमि में विवाह की आंधी बहती रही। नर-संहार हुआ। किशोर और युवा तक अनावश्यक उत्साह में आ, धर्मांधों के भाषणों के प्रवाह में आ, अपना रक्त सरयू के पानी की तरह बहा गए।...... अरे मैं तो ठहरा निर्गुणिया, मेरा निर्गुण राम, घट-घट-वासी है। वह कहाँ किसी एक मंदिर, किसी एक पाषाण-मूर्ति में बसने-रमने गया? क्या मैंने गलत कहा था अपने जीवन-काल में- पाहन पूजे हरि मिलै, तो मैं पूजौं पहार। ताते वह चाकी भली, पीस खाय संसार।।...... मुआफ करना मैं तुम्हारी देव-भाषा की उस उक्ति का कायल कभी नहीं रहा कि सत्य बोलो, प्रिय बोलो लेकिन सत्य भी अगर प्रिय नहीं

हो, मीठा नहीं हो, कड़वा हो तो नहीं बोलो- 'सत्य ब्रूयात् प्रिय ब्रूयात् / न ब्रूयात् सत्यं अप्रि?म्।' तो मैं तो सत्य ही बोलूँगा और खरा ही बोलूँगा और आज जब तुम बाबरी मस्जिद के नाम पर बवेला खड़ा कर चुके हो, लहु के परनाले बहा चुके हो तो मैं मस्जिद को लेकर भी अपनी उस पुरानी उक्ति को ही दुहराऊंगा कंकड़ पाथर जोर के, मस्जिद लिया चुनाय। तां चढ़ि मौला बांग दे, बहरा हुआ खुदाय।।''[81]

उपन्यास के अन्तिम परिच्छेद 'अथ कबीर उवाच' में कबीर अयोध्या-विवाद का भी हल देते हैं। मन्दिर-मस्जिद का झगड़ा छोड़कर वहाँ गरीब हिन्दू-मुसलमानों के लिए निवासस्थान बनाने का सुझाव देते हैं। लेखक के शब्दों में कबीर कहते हैं - ''मेरी बात मानेंगे आप? मस्जिद तो आप तबाह ही कर चुके, वहाँ एक नन्हा-सा मन्दिर बना रखा है नहीं? वहां पुलिस का पहरा भी बैठा दिया है। धन्य हुए मेरे राम जो सबके पहरुआ हैं, उन पर भी पहरा। खैर मैं कह रहा था कि मुझे न मस्जिद से कुछ लेना, न मंदिर से। आपको बता ही चुका मुझे दोनों में विश्वास नहीं। न मस्जिद में खुदा का वास है, न मंदिर में राम का, परमेश्वर का। आप कहते हैं राम वहां पैदा हुए। जन्मभूमि है वह उनकी। मैं कह चुका हूँ, राम, कृष्ण कभी नहीं पैदा होते। निराकार आकार नहीं ग्रहण किया करता है। अवतार नहीं लेता परब्रह्म। किसी दशरथ का कोई पुत्र वहां पैदा हुआ होगा। मेरा राम नहीं।....... तो मानव के लिए ही कुछ कीजिए।...... काशी में बहुत से हिन्दू-मुसलमान बिना घर-बार के हैं। उनमें से कुछ को ही सही इन मकानों में साथ-साथ बसा लीजिए। इन्सान का मन प्रसन्न हो जाएगा तो मानव-मन भी प्रफुल्लित होगा और राम और खुदा भी खिल आएंगे। साम्प्रदायिक सद्भावना का एक अद्भुत उदाहरण भी आप प्रस्तुत करेंगे इस रूप में।...... मुहब्बत पनपेगी वहाँ।''[82]

कबीर की मृत्यु के सन्दर्भ में जो चमत्कारपूर्ण घटना बतायी जाती है उसका निराकरण लेखक इस प्रकार करते हैं कि हिन्दुओं और मुसलमानों में उनकी अन्तिम क्रिया को लेकर जब विवाद होता है तो बिजुली खां इनके शव पर डाले गये पुष्पों को दो भागों में विभक्त कर देता है और उनको दोनो सम्प्रदायों के लोगों को दे देता है और कबीर का शव उनके पुत्र कमाल को सौंप देता है।[83]

यह कबीर की राम कहानी है, अतः उसमें स्थान-स्थान पर कबीर की साखियों और पदों का होना स्वाभाविक है। इनसे कबीर-काव्य का एक परिवेश हमारे सामने आता है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य है-

(01) कंकड़ पाथर जोर के, मस्जिद लिया चुनाय।
तां चढ़ि मौला बांग दे, बहरा हुआ खुदाय।।

(02) माली आवत देखकर, कलिया करीं पुकार।
फूलन फूलन चून लिए, काल्ह हमारी बार।।

(03) पानी केरा बुलबुला, अस मानुस की जात।
देखत ही छिप जाएगा ज्यों तारा परभात।।

(04) झीनी-झीनी बीनी चदरिया....
ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया।।

(05) मोकौ कहाँ ढूंढत बंदे मैं तो तेरे पास में....
कहै कबीर सुनो भाई साधो सब सांसो की सांस में

(06) मन ना रंगाए, रंगाए जोगी कपरा
नाम छांड़ि पूजन लगे पथरा.....
दाढ़ी बढ़ाय जोगी है गैले बकरा

(07) माला फेरत जग मुआ मिटा न मन का फेर।
करका मनका छाड़ि के मन का मनका फेर।।

(08) बकरी खाति पात है, ताकी काढ़ी खाल।
जो नर बकरी खात हैं, तिनकौ कौन हवाल।।

(09) गाय, भैंस, घोड़ी, गधी नारी नाम है तास।
जो मंदिर में ये बसै तहा न कीजै वास।।

(10) कबिरा ब्राह्मण की कथा, सो चारों की नांव।
सब अंधा मिली बैठहीं, भावैं तहां ले जांव।।

(11) ब्राह्मण ते गदहा भला, आन देव ते कुत्ता।
मुल्ला ते मुरगा भला शहर जगावै सुत्ता।

(12) क्या काशी क्या मगहर ऊसर जो पै हरदय बस मोरा
जो काशी तन तजे कबीरा, राम ही कौन निहोरा।।[84]

उपन्यास कुल बयालीस परिच्छेदों में विभाजित है। अन्तिम अध्याय 'अथ कबीर उवाचन में कबीर ने प्रस्तुत उपन्यास की भाषा के सन्दर्भ में कुछ खुलासा किया है। उपन्यास के प्रारंभ में भारत के वर्तमान के सन्दर्भ में अपनी कुछ पीड़ाओं

और चिंताओं को व्यक्त किया है। यहाँ ध्यान रहे कि कबीर इसमें अभी तक की बात कर रहे है क्योंकि लेखक ने उसकी टेकनीक ही ऐसी रखी है कि मानो वही आज की तारीख में लेखक के रूबरू हो रहा हो। दूसरे और तीसरे परिच्छेद में कबीर के जन्म की बात को लिया है जो लोकश्रृति पर आधारित है। यहाँ पर नीरू-नीमा की बात, कबीर और धनिया के नारी विषयक विचार, कबीर के राम विषयक विचार इत्यादि का विवरण मिलता है। चौथे परिच्छेद में दशाश्वमेघ घाट पर एक त्रिपुण्डधारी ब्राह्मण पंडित का कबीर से संवाद होता है। यहाँ राम नाम के महत्व को भी प्रतिपादित किया गया है। उसके बाद मौलवी-मुल्लाओं तथा पंडित-पुरोहितों द्वारा कबीर को प्रताड़ित करना, कबीर द्वारा उलटबांसियों में उनका उत्तर देना, किसी मुल्ला द्वारा कबीर को मारने के लिए भेजे गए गुंडों का कबीर से प्रभावित होकर उनका मुरीद हो जाना, कबीर द्वारा राम-रहीम, कृष्ण-करीम एकता की बात, कबीर और उनके पिता में समझौता कि कबीर बुनेंगे और पिता हाट जाएंगे, परिवार की निर्धनता, कबीर-धनिया का वार्तालाप, पतिव्रता नारी की चर्चा, कबीर और लोई का विवाह जैसी घटनाओं को लिया गया है।[85]

ग्यारह से इक्कीसवें परिच्छेद तक में निम्नलिखित घटनाओं को लिया गया है। कबीर के बढ़ते प्रभाव से काशी के पंडितों का चिंतित होना, कबीर को गुरु के विषय में ललकारना, कबीर का ठान लेना कि रामानंद को ही गुरु बनाएँगे, कबीर का रामानंद आश्रम में अपमानित होना, कबीर की युक्ति द्वारा रामानंद का कबीर को शिष्य के रूप में स्वीकारना, रामानंद को गुरु बनाने की बात पर कबीर के पिता का कबीर को लताड़ना, रामानंद द्वारा राममंत्र मिलने पर हिन्दू-मुस्लीम दोनों तबकों के कट्टरवादी तत्व का नाराज होना, दोनों तबकों के लोगों द्वारा कबीर को अपनी तरफ खींचने की होड़, कबीर द्वारा मौलवियों को फटकारना, पुत्र कमाल की काहिली के कारण कबीर की चिंता, कनफटे नाथपंथियों की आलोचना, दुन्वयी प्रेम और इल्हामी प्रेम के सन्दर्भ में कबीर-कमाल संवाद, उसी उपक्रम में प्रेम विषयक अनेक साखियां, कबीर और धनिया वाला प्रसंग, धनिया का कबीर के घर में बस जाना आदि-आदि।[86]

उसके पश्चात् कबीर को अपनी पुत्री कमाली के लिए अनायास सुयोग्य वर का मिल जाना, कबीर का कमाली की चिंता से मुक्त होना, रामानंद द्वारा काशी के पंडितों का शास्त्रार्थ में पराजित होना, रामानंद का अंतिम प्रयाण, मृत्यु से पूर्व कबीर और अष्टानंद को रामानंद का उपदेश, स्वामी रामानंद का परलोकगमन तथा पुत्र कमाल के कारण कबीर की यात्रा (देशभ्रमण) में बाधा, कबीर और कमाल के बीच

कटु संवाद, धनिया द्वारा कमाल को समझा लि जाने पर कबीर की यात्रा के विघ्न का दूर होना, पद्मनाथ एवं श्रुतिगोपाल नामक दो शिष्यों के साथ कबीरजी का प्रस्थान, जौनपुर के नवाब को कबीर का उपदेश, कबीरजी की बातों से प्रभावित होकर हिन्दुओं पर जोर-जबरदस्ती को बंद करना, झूंसी के कब्रपूजक मौलवियों और मुसलमानों के साथ कबीर का वाद-विवाद जैसी घटनाओं का विवरण मिलता है।[87]

बत्तीसवे परिच्छेद के बाद कबीर की बढ़ती लोकप्रियता के कारण हिन्दू पंडितो तथा मुसलमानो मुल्लाओं के शिष्ट मंडल का दिल्ली के सुलतान सिकंदर लोदी के पास जाना, सिकंदर लोदी द्वारा कबीर को इस्लाम कबूल करवाने का प्रस्ताव, कबीर जी द्वारा उस प्रस्ताव को ठुकराना, उनकी जीभ कटवाने का आदेश कबीर को गंगा नदी की नांव में बांधकर उनको मारने का षड़यंत्र, यौगिक क्रिया द्वारा कबीर का बच निकलना, कबीर को मृत समझकर काशीवासियों का शोक मनाना, सिकंदर लोदी की प्रसन्नता का अल्पजीवी ठहरना, कबीर जी की बच जाने की बात का प्रकट होना, दशाश्वमेघ घाट पर लोगों की भीड़ का जमना, लोगों की भीड़ के साथ लोई और धनिया का पहुँचना, कबीर जी द्वारा एक मुरदे में प्राण फूंकने की बात, कबीर का दक्षिण के प्रदेशो की ओर प्रस्थान, दक्षिण के ब्राह्मणों से शास्त्रार्थ, भक्ति के तीन मार्गों की चर्चा, चमत्कारवादी नाथपंथी से निबटने की बात, कबीर के शिष्य श्रुतिगोपाल की कहानी, कबीर जी द्वारा पूर्णानंद नामक एक शाक्त को पराजित करने की बात जैसी घटनाओं का आलेखन मिलता है।[88]

सड़तीसवें परिच्छेद में चम्बल घाटी के दस्यु सरदार के हृदय-परिवर्तन की कथा को लिया गया है। उसके पश्चात् बंगाल यात्रा, वामाक्षिपा नामक तांत्रिक और रामकृष्ण परमहंस का उल्लेख, कालदेव नामक तांत्रिक से सामना, पूर्व बंगाल में हिन्दू-मुस्लीम एकता का प्रचार करना, असम यात्रा, शाक्त तांत्रिक ब्राह्मण से कबीरजी का सामना, ब्रह्मपुर से लौटते समय गोरखपुर के नवाब बिजुली खां से कबीरजी की भेंट, बिजुली खां पर कबीरजी का प्रभाव, उनका पक्का भक्त बन जाना, लोई का निधन, कबीर चौरा पहुँचते ही धनिया का निधन, कबीर जी के महाप्रस्थान का वर्णन, मगहर जाकर कबीरजी द्वारा प्राण-त्याग जैसी घटनाओं को लेखक ने बयालीसवें परिच्छेद तक वर्णित किया है। अन्तिम 'अथ कबीर उवाच' में कबीरजी ने अयोध्या विवाद का समाधान अपने ढंग से किया है। इस प्रकार 'देख कबीरा रोया' उपन्यास को लेखक ने आत्मकथा के रूप में प्रस्तुत किया है। कबीरजी की आत्म लेखक में पहुँच जाती है। अतः बाद की अनेक घटनाओं को भी इसमें समेकित किया गया है।[89]

जहाँ तक उपन्यास की भाषा का प्रश्न है कबीरजी की भोजपुरी भाषा तो उनकी साखियों में आई है अन्यथा पूरा उपन्यास लेखक की भाषा में है और उसका भी तर्कसंगत कारण लेखक ने दिया है। तथापि जहाँ जहाँ तक हो सका है लेखक ने उनके दूसरे उपन्यासों जैसी संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावली का प्रयोग कुछ कम ही किया है। भाषा के सन्दर्भ में अन्तिम 'अथ कबीर उवाच' में स्पष्टता की गई है। यथा- ''भाषा के प्रति अपने पूर्वाग्रह से यह अपने को मुक्त नहीं कर पाया। कहीं-कहीं मुझसे उर्दू-फारसी के अल्फाज भी बुलवाये है, पर प्रमुखता इसने अपनी तत्सम शब्दावली को ही दी है।....... फिर भी मेरी आत्मा संतुष्ट लौट रही है। मेरे लेखक ने मुझ पर एक मेहरबानी अवश्य की है। तत्सम शब्दों का भी इसने प्रयोग किया है तो एक सीमा तक ही। वह भी कहीं-कहीं । क्लिष्ट शब्द तो नहीं है प्रायः। कहीं वह अपनी सर्वप्रिय भाषा पर उतरता तो यह पुस्तक दूसरा 'पवनपुत्र' बन जाती । नहीं मैं एहसान के रूप में इसकी इस पुस्तक का प्रचार नहीं कर रहा । आपको पता है किसी को मैंने अपने समक्ष कभी लगाया नहीं। इस लेखक को क्या घास डालूंगा? पर नहीं पढ़ीं हो तो इसकी पुस्तक 'पवनपुत्र' तो पढ़ ही लीजिए। वह इसलिए कि तब पता लगेगा कि सचमुच इसकी संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावली क्या होती है। अगर उस भाषा में मेरी आत्मगाथा आती तो अपना सिर ही पीट लेता। मैं आम आदमी हूँ। ले-देकर यह पुस्तक आम आदमी की भाषा में ही है। आम आदमी तक यह पहुँचेगी। वह इसे पढ़ समझ पाएंगे। अगर अपनी भाषा को प्रायः आम आदमी की भाषा के स्तर पर उतारने में मेरे लेखक महोदय को उनकी लेखकीय गरिमा कहीं से गिरती नजर आ रही है तो मैं चाहूंगा एक ग्रंथ में यही सही। दूसरे में अपना पांडित्य प्रकट कर लीजिएगा। मेरी भी दुआ रहेगी साथ में क्यों?[90]

अन्य उपन्यासों की तरह प्रस्तुत उपन्यास में भी लेखक ने मुहावरों का भरपूर प्रयोग किया है। 392 पृष्ठों के उपन्यास में लगभग 350 जितने मुहावरें हैं। यहाँ केवल उदाहरणस्वरूप कुछेक का उल्लेख किया जा रहा है। यथा लोहा लेना, आंखों की किरकिरी बनना, नाक का बाल बनना, ऊँट का पहाड़ के नीचे आना, मन का बांसो उछलना, हाथों के तोते उड़ जाना, राई का पहाड़ बनाना, घास नहीं डालना, छाती पर सांप लोटना, चेहरा सफेद हो जाना, खेत होना, नाक रगड़ना आदि-आदि।[91] मुहावरों की तरह कहावतों के भी खूब प्रयोग मिलते हैं। यथा खुदा देता है तो छप्पर फाड़कर देता है, दीपक तले अंधेरा तो होना ही है, मियां की जूती मियां के सर, घी का बना लड्डू टेढा भी हो तो अच्छा लगता है, खोदा पहाड़ निकली चूहिया आदि-आदि।[92] तो कहीं-कहीं कहावतों के प्रयोग में कुछ नवीनता लाने का

प्रयास भी हुआ है। जैसे बबूल का पेड़ क्या बुढापे में कांटे उगाना छोड़ देता है (पृ.17) तथा नीम और नीम के पेड़ में आम के फलों को लगते देखा है (पृ.23)।

लेखक ने कहीं-कहीं सूक्तियों का प्रयोग भी किया है। जैसे (01) पढ़ लिख जाने से, तर्क-कुतर्क करने से ही कोई साधु नहीं बन जाता। साधु दिमाग के परिष्कार से कोई नहीं बनता, इसके लिए मन का प्रक्षालन आवश्यक होता है। और मन का प्रक्षालन प्रेम से होता है। (02) संपूर्ण विश्व उलटा लटका हुआ है। यह उस पेड़ के समान है जिसकी जड़े तो ऊपर है पत्ते और शाखाएं नीचे। अर्थात् मूल तो उपर आकाश में और सृष्टि के रूप में उसका विस्तार नीचे धरती पर। (03) उगते सूरज को अर्घ्य देता है मनुष्य , डूबते सूरज का तमाशा देखने में वह आनंदित होता है। (04) सच्चे शास्त्र हमारे अनेक संशयों को दूर करने के अलावा हमें अदृश्य के भी दर्शन करा देते हैं। वे ही वस्तुतः आँखें है। जिनको शास्त्रों का पूरा ज्ञान नहीं है वे इन चर्म-चक्षुओं के होते हुए भी अंधे है।[93]

प्रस्तुत उपन्यास कबीर के जीवन पर आधारित है। अतः उसमें अरबी-फारसी शब्दों का आना स्वाभाविक ही माना जाएगा। उपन्यास में इबादत, हिमाकत, जिबह, नायाब, औलाद, चस्पाँ, गर्द, अल्लाहताला, आफताब, अम्मीजान, अब्बाजान, खिदमत, मकसद, अहमक, मुर्दगाह, काफिर, जहमत, हुक्मऊदुली, बदसलूकी, अल्फाज़, तशरीफ, रूहानीयत जैसे अरबी-फारसी के शब्द मिलते हैं।[94]

कबीरदास के समय में अंग्रेजी भाषा का प्रचलन नहीं था और कबीर पढे-लिखे भी नहीं थे परन्तु जैसा कि लेखक ने स्पष्टीकरण दिया है, कबीर ने लेखक के द्वारा, लेखक की जुबान में अपनी बात कही है, इसलिए कहीं-कहीं अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। जैसे - कोंक्रीट, लाउड-स्पीकर, सस्पेंस, क्राइस्ट, ग्लोबल विलेज,ग्लोब, कोड, वाल्यूम आदि-आदि।[95]

उनके अन्य उपन्यासों की तरह यहाँ भी संस्कृत शब्दों का प्रयोग पुष्कल परिमाण में हुआ है। यथा जिह्वा, नरभक्षी, अनभिक्ष, गर्वोक्ति, वैदूष्य, मरणकंडिका, प्रसन्नापूरित, अमृतवर्षिणी, प्रक्षालन, निस्त्रैगुण्य, ध्यानावस्थित,घृत, सहगामिनी, प्रत्यारोपित, अभिजात्य, विश्वमस्तिष्क, सर्वतोभावेन समर्पित, शुभ्रवसना, कंटकाकीर्ण, श्रृगाल, सूक्ष्मान्वेषिणी, कामाभिव्यक्ति, मार्तण्ड, काष्ठासन, प्रेमास्पद आदि-आदि।[96]

कुछ विशिष्ट प्रकार के विशेषणों के प्रयोग भी मिश्रजी के प्रस्तुत उपन्यास में उपलब्ध होते है। जिनमें कुछ विशेषण तो विशेषण विपर्यय अलंकार की सीमा को भी स्पर्श करते हैं। जैसे-अड़ियल सांड, इल्माई अनुभव, वर्णसंकरी भाषा, मजहबी तकादे,

लंगड़े तर्क, बजबजाती भीड़, स्वर्णवर्णी वलय, ध्वनिविस्तारक यंत्र, कमजोर वर्त्तिका, अनब्याही औरत, अविद्याजनित अंधकार, सदा-सलिला नदी, औपन्यासिक आत्मगाथा, अकल्पनीय कायरता, नित्य सलिला नदी आदि-आदि।[97]

विशेषणों की भाँति प्रस्तुत उपन्यास में कुछ नए रूपकों के प्रयोग भी मिलते हैं, जैसे - सम्प्रदाय के सर्प, मातृगर्भ की नर्क और कैद, अहंकार के सर्प, सफलता-सोभाग्य का सूरज, भक्ति का रससागर, अज्ञान-तिमिर, श्रद्धा का बिरवा, तर्क के तीर, सोच के बवंडर, सपनों का शीशमहल, भीड़ सागर के ज्वाल आदि-आदि।[98]

इस तरह प्रस्तुत उपन्यास की भाषा भी मिश्रजी के अन्य उपन्यासों की तरह संस्कृत-बहुला भाषा है। रूपक, उपमान, विशेषण आदि की दृष्टि से भी सम्पन्न है। मुहावरों और कहावतों का प्रयोग भी समुचित ढंग से हुआ है।

का के लागूं पांव

'का के लागू पांव' डॉ. भगवतीशरण मिश्र का एक एतिहासिक उपन्यास है। इसमें सिक्खों के दसम गुरु गोविन्दसिंह की बालगाथा और नवम गुरु गुरु तेग बहादुर की प्रायः सम्पूर्ण संघर्ष कथा को सशक्तता प्रामाणिक ऐतिहासिकता से सम्पूर्ण विश्वसनीयता और लेखकीय कुशलता के साथ चित्रित किया गया है। इस प्रकार प्रस्तुत औपन्यासिक कृति प्रायः दो हिस्सों में बंट गई है। एक हिस्से में गुरु गोविन्दसिंह का आरम्भिक जीवन है तो दूसरे हिस्से में गुरु तेगबहादुर का साहस, शौर्य और अन्ततः उनकी लोमहर्षक शहादत की रोचक भावगाथा को यथार्थपरक ढंग से उकेरा गया है।

प्रस्तुत उपन्यास के सन्दर्भ में स्वयं लेखक का कथन है- ''गुरु गोबिन्द सिंह की गाथा के साथ इतिहास और साहित्य में भले ही पूरा न्याय हुआ हो पर पिता गुरु तेगबहादुर को भरपूर न्याय मिला कलमकारों के हाथों इसका दावा कौन करेगा? आनेवाली पंक्तियों में इसी क्षतिपूर्ति का आयोजन है। सही है, यह पुस्तक गुरु गोबिन्द को लेकर आरम्भ हुई है पर इसमें सर्वाधिक न्याय हुआ है पुत्र के बदले पिता के साथ ही। यह कहानी अगर पुत्र के निर्माण और निर्भीकता की है तो पिता के पंथ हेतु प्रचार-प्रसार, त्याग-बलिदान और संघर्ष तथा अन्ततः समाप्ति की भी कुछ कम नहीं है।''[99]

स्वयं लेखक का कहना है कि ऐतिहासिक उपन्यास होने के बावजूद इसमें इतिहास अधिक बोलता है उपन्यास कम। ऐतिहासिक उपन्यासो में ऐतिहासिक पात्रों

के अलावा कुछ काल्पनिक पात्र भी होते हैं किन्तु प्रस्तुत उपन्यास के सन्दर्भ में लेखक का दावा है- "इसका एक पात्र भी काल्पनिक नहीं, चाहे इसका सम्बन्ध गुरु-पुत्र से हो या पिता से। कोई यह भ्रम नहीं पाले कि अर्द्ध विक्षिप्त पंडित शिवदत्त से लेकर पीर भीखन शाह अथवा राजा फतहचन्द मैनी और मामा किरपालचन्द में से कोई भी लेखकीय कल्पना की उपज है।"[100] इसे हम एक ऐतिहासिक जीवनीपरक उपन्यास कह सकते हैं।

उपन्यास कुल छिहत्तर परिच्छेदों में विभाजित है। उसके प्रमुख पात्रों में गुरु तेगबहादुर, गोबिन्दराय, नानकी देवी (गुरु तेगबहादुर की माता), गूजरी देवी (गुरु तेगबहादुर की धर्मपत्नी), औरंगजेब, मिर्जा राजा जयसिंह का पुत्र रामसिंह, भीखनशाह, राजा चक्रध्वज, राजा फतहचंद मैनी और उनकी रानी, पं.शिवदत्त, रहीम बख्श, करीम बख्श, पीर आरिफदीन, काजी पीर मुहम्मद, साहिबचन्द, इफ्तिखार खां आदि की गणना कर सकते हैं। रामसिंह की सलाह अनुसार औरंगजेब गुरु तेगबहादुर को जेल से मुक्त करता है। गुरु अनेक स्थलों की यात्रा करते हुए पाटलिपुत्र (पटना) पहुँचते हैं वहाँ उनका स्वागत होता है। यहाँ पर गुरु हिन्दू और मुसलमान, सवर्ण, अछूत सभी तबके के लोगों को खालसा पंथ में दीक्षित करते हैं और 'हरिमंदिर साहब' की स्थापना करते हैं जिसकी गणना सिक्खों के चार महान गुरुद्वारों में दूसरे स्थान पर होती है। उसके बाद गुरु बंगदेश की ओर प्रयाण कर जाते हैं उस समय गूजरी देवी गर्भवती थी। गूजरी देवी 22 दिसम्बर 1666 की आधी रात को एक बालक को जन्म देती है जो आगे चलकर गोविन्दराय नाम से प्रसिद्ध होता है। पंजाब के घुरम गाँव के भीखन शाह पीर को अन्तः स्फुरणा होती है कि खुदा के नूर के रूप में पूरब में एक बच्चे ने जन्म लिया है। गुरु तेगबहादुर सिक्खों के छठे गुरु हरगोविन्दसिंह से अत्यधिक प्रभावित थे। अतः वे अपने पुत्र का नाम गोविन्दराय रखते हैं। पीर भीखनशाह खुदाई नूर वाले इस शिशु के सन्दर्भ में भविष्यवाणी करते हैं कि वह हिन्दू-मुसलमान दोनों को समान दृष्टि से देखेगा। बंगप्रदेश से गुरु तेगबहादुर असम की ओर प्रस्थान करते हैं और 'माझुली' द्वीप के वैष्णवाचार्य से शास्त्रार्थ करके एकेश्वरवाद के सिद्धांत को लोकप्रिय बनाने में सफल होते हैं। लंगर के कारण भक्तों में समानता का प्रचार होता है। बालक गोविन्दराय की अटखेलियों से मामा किरपालचन्द बहुत चिन्तित रहते हैं और उसे बुरी नजर से बचाने की दृष्टि से दर्शनों के लिए उमड़ती भीड़ के लिए कुछ नियम निर्धारित करते हैं। तीन साल का गोविन्दराय तीरंदाजी का अभ्यास करता है। कृष्ण की भाँति पनिहारिनों के घड़े फोड़ता है। पक्षियों का शिकार करता है। इस प्रकार 'पुत्र के लक्षण पालने में' से

वाली कहावत को चरितार्थ करता है। एक से दस परिच्छेद में यहाँ तक की कथा का समावेश होता है।

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY The M. S. University of Baroda

परिच्छेद ग्यारह से परिच्छेद पच्चीस तक की मुख्य घटनाओं में गुरु हर-गोविन्दसिंह के वीर धर्म की व्याख्या, कामाख्या देवी के दूराचारों पर गुरु का ध्यान केन्द्रित होना, गुरु तेगबहादुर पर मुगल सेनापति रामसिंह का पत्र, गोविन्दराय द्वारा बालवाहिनी का निर्माण, काल्पनिक किलो को फतह करने की योजना, गंगा में तैराकी का अभ्यास, पं. शिवदत्त का विश्वास कि बालक गोविन्दराय कृष्ण का ही अवतार है, गुरु तेगबहादुर की आदिवासी नरेश चक्रधर से मुलाकात, चक्रधर से मन्त्रणा, रामसिंह द्वारा प्रेषित प्रस्ताव की बात, चक्रधर का गुरु के पैर पकड़ लेना, गुरु का रामसिंह की छावनी में पहुँचना, गुरु द्वारा चक्रधर की शक्ति का बढ़ा-चढाकर वर्णन करना, संधि का प्रस्ताव, संधि-वार्ता की भेंट में गुरु के एक हिस्से की बात, रामसिंह का प्रस्ताव को सुनकर सकते में पड़ जाना, गोविन्दराय का उनकी बालवाहिनी सेना द्वारा नवाबराय की सवारी को सज़दा न करना, पं. शिवदत्त के ध्यान में गोविन्दराय का आना, पं. शिवदत्त द्वारा गोविन्दराय का 'बाला-प्रितम' नाम रखना, राजा फतहचंद मैनी और उनकी रानी की कथा, बाला-प्रितम का ध्यान करने की बात, छः महीने के पश्चात् गोविन्दराय का रानी के महल में जाकर माँ कहकर पुकारना, गोविन्दराय को दोनों माँओं का प्रेम मिलना, रहीम बख्श और करीम बख्श की कहानी, बख्श बंधुओं द्वारा गोविन्दराय तथा उनकी बाल-सेना को दो बागों की भेंट देना, (आज भी ये बाग और जमीन गुरुद्वारा 'हरिमन्दिर साहब' पटना की संपत्ति है।) गोविन्दराय को प्रत्येक तबकों के लोगों का प्रेम मिलना, खिलौनों के भण्डार, नए-नए खेल, अचानक गोविन्दराय द्वारा माता को पिता के बारे में पूछना, गोविन्दराय की हठ, माँ द्वारा पिता के शीघ्र ही लौटने की आश्वस्ति जैसी घटनाओं का आलेखन मिलता है।

उसके बाद पैंतीस तक की घटनाओं में रामसिंह और चक्रधर के बीच संधि, गुरु तेगबहादुर का पाटलिपुत्र में आगमन, पिता-पुत्र का देर तक एक-दूसरे से सटकर बैठना, गोविन्द का माता गूजरी देवी से प्रश्न, गुरु तेगबहादुर का पंजाब की ओर प्रस्थान करने की बात, गोविन्द राय का पिता के साथ जाने के लिए मचलना, किसी तरह समझाना, गुरु को अपनी संस्कृत के ज्ञान की कमी का एहसास, गोविन्दराय में यह कमी न रहे उसकी सतर्कता, गुरु का प्रस्थान, पंजाब पहुँचकर गुरु का शिवालिक पर्वत-श्रृंखला की तलहटी में बसे गाँव भाखेपुर में किला बनवाना, आनन्दपुर में गुरु का भव्य स्वागत, आनन्दपुर की स्थितियों का जायजा लेना, संगत-पंगत परम्परा को

बढ़ावा देना, व्यवसायों-मदरसों, पाठशालाओं की व्यवस्था, शस्त्रास्त्रों के भंडार को बढ़ाना, शिष्यों से हीरे-जवाहरात के स्थान पर अस्त्र-शस्त्र की भेंट लेना, अच्छे नस्ल के घोड़े की भेंट लेना, अश्वशाला में अश्वों की संख्या में बढ़ोतरी होना, पिता की उपेक्षा से गोविन्द का निराश होना, फलस्वरूप फौलादी इच्छाशक्ति का जन्म होना, मामा किरपालचन्द द्वारा गुरुमुखी और हिन्दी का अक्षरज्ञान प्राप्त करवाना, गोविन्दराय द्वारा 'गुरु ग्रन्थ साहिब' को पढ़ना, भक्ति के महत्व को समझना, गोविन्दराय और पं. शिवदत्त के बीच तर्क-वितर्क, पं. शिवदत्त द्वारा श्रीमद् भागवत का उद्धरण देना कि स्वयं कृष्ण देवीउपासना करते थे, अतः पं. शिवदत्त का गोविन्दराय को देवी-उपासना का आदेश, गोविन्दराय का देवी उपासना के लिए जप-तप करना, नित्य मंदिर जाना, गोविन्दराय का प्रश्न कि जिसका आकार नहीं उसके आवास की क्या आवश्यकता? पं. शिवदत्त द्वारा गोविन्दराय को समझाना कि मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा जैसे स्थानों में असंख्य लोगों द्वारा पूजा प्रार्थना होने से ऊर्जा के केन्द्र हो जाते हैं, पंडितजी के उत्तर से गोविन्द का संतुष्ट होना जैसी घटनाओं का आलेखन हुआ है।

उसके पश्चात् गोविन्दराय में भक्ति की प्रवृत्ति का बढ़ना, पं. शिवदत्त से धर्म-चर्चा, धर्म की व्याख्या, बाल-सैनिकों में प्रवचन, नानक-वाणी के अर्थों को समझने का प्रयास, गोविन्द और परिवार के लिए गुरु तेगबहादुर का बुलावा, बालसखा; बालसैनिकों, राजा फतहचंद मैनी, और उनकी पत्नी मैनी, रहीम बख्श और करीम बख्श, पं. शिवदत्त आदि से वियोग; गोविन्द का एकांत में रोना, मामा किरपालचंद की तैयारियाँ, दूर-दूर तक लोगों का उनके साथ जाना, आनन्दपुर साहब की ओर गमन, दादी नानकी देवी की तीर्थस्थलों की यात्रा की इच्छा, काशी में काशी विश्वनाथ, भैरव मन्दिर, संकटमोचन आदि के दर्शन, गंगा और सतलज की तुलना, अयोध्या-वर्णन, अयोध्या के हनुमानगढ़ी मन्दिर का वर्णन, मन्दिर के निर्माण की कथा, पं. शिवदत्त की मृत्यु, लखनऊ यात्रा, लक्ष्मण द्वारा बसाए जाने की बात, अलीगंज के प्राचीन हनुमान मन्दिर की कथा, यात्रा के कारण परिवार के शीघ्र न पहुँचने पर गुरु तेगबहादुर की चिन्ता जैसी घटनाओं को पैंतालीसवें परिच्छेद तक में समाविष्ट किया गया है।

उसके पश्चात् हनुमानबाड़ी के हिन्दू फकीर के चमत्कार की घटना, लखनऊ के भूलभुलैया की चर्चा, लखनऊ के पश्चात् आनन्दपुर शीघ्र पहुँचने के लिए काफिले की गति का शीघ्र तेज करने का आदेश, नानकी देवी के मायके लखनौर में काफिले का कुछ रूक जाना, वहाँ गोविन्दराय की प्रवचनकला से सभी का अभिभूत हो जाना, पीर आरिफदीन और भीखनशाह का गोविन्दराय के दर्शनों के लिए आना,

आरिफदीन और भीखनशाह की दुआओं की बात सुनकर गुरु तेगबहादुर का प्रसन्न होना, आनन्दपुर में स्वागत की तैयारियाँ, सतलज के तट पर पिता-पुत्र की बातचीत, पिता द्वारा प्रश्न पूछे जाने पर गोविन्दराय का बताना कि आध्यात्मिक कविता और वीर रस के पद उनकी पहली पसंद है, नानकजी के पदों को सुनाना, गुरु की प्रसन्नता; कविता, आखेट, अश्वारोहण, युद्ध आदि की चर्चा, गुरु तेगबहादुर के गुरु बनने की कथा, गुरु को गोविन्दराय के प्रशिक्षण की चिन्ता, योग्य शिक्षकों की तलाश का काम किरपालचंद को सौंपना, गोविन्दराय का पहली बार आखेट में जाना, आखेटकों की बातों से माता गूजरी देवी का प्रसन्न होना, उड़ते पक्षी का लक्ष्यवेध, पहले ही दिन एक चित्तल का शिकार, आखेट की कथा से गुरु तेगबहादुर की छाती का दूना हो जाना, सेनापति द्वारा गोविन्दराय का सेना-प्रशिक्षण, संस्कृत-फारसी के विद्वानों की खोज में काफी कठिनाई, पंजाब में पटियाला के निकट साहिबचन्द के रूप में संस्कृत के आदर्श शिक्षक का मिल जाना, साहिबचन्द का पाणिनी के व्याकरण पर अधिकार, फारसी शिक्षक के रूप में काजी पीर मुहम्मद साहब जो साहिबचन्द के मित्र थे का मिल जाना, तीनों का आनन्दपुर की ओर प्रस्थान जैसी घटनाओं को तीरसठवें परिच्छेद तक ले लिया गया है।

गोविन्दराय को युद्धाभ्यास और आखेट में से आखेट में अधिक रुचि, 'विचित्र नाटक' में उसके उल्लेख की बात, साहिबचन्द और काजी पीर मुहम्मद का आनन्दपुर पहुँचना, गोविन्दराय की दिनचर्या को निश्चित करना, पूरे दिन की समय-सारणी बनाना; प्रातः का समय साहिबचन्द के साथ, शाम का समय काजी पीर मुहम्मद के साथ, नाश्ता और भोजन का समय सेनापति के साथ, दोपहर में आखेट, आखेट से लौटकर शस्त्रास्त्र संचालन, व्यूहरचना, छापेमारी और किलेबंधी का अभ्यास, प्रातः माँ के आशीर्वाद लेकर रात सोने से पूर्व पिता से दिनचर्या की चर्चा; दादी मां से कहानियाँ सुनने का गोविन्दराय का प्रस्ताव, गूजरी देवी का कथन कि 'अब उसे कहानियों को सुनना नहीं कहानियों को गढ़ना है', हफ्ते में एक दिन की छुट्टी का गूजरी देवी का प्रस्ताव, गुरु की मालवा-यात्रा, संगत-पंगत और लंगर से समानता की स्थापना, सैफाबाद के पठानों द्वारा उनका स्वागत, चाटुकार दरबारियों द्वारा गुरु तेगहबादुर के खिलाफ औरंगजेब को भड़काना, कश्मीर के सूबे इफ्तिखार खां की बात कि यदि ब्राह्मण इस्लाम कबूल करेंगे तो बाकी लोग अपने आप आ जाएँगे, कश्मीर से शुरुआत करने का आदेश, इफ्तिखार खां का प्रस्थान, कश्मीर में इफ्तिखार खां के अत्याचार, तेगबहादुर की चिन्ता, गोविन्दराय से कहना कि 'सिक्खों की परीक्षा का समय आ गया है', कश्मीर के ब्राह्मणों का आनन्दपुर में आना, गुरु का कश्मीरी

पंडितों से कहना कि वे जाकर सूबेदार से कहे कि गुरु के इस्लाम कबूल करने पर वे भी ऐसा कर देंगे, धर्म की रक्षा के लिए गुरु का प्रस्थान, गोविन्दराय का पिता को विदा देना, गुरु तेगबहादुर का आनन्दपुर साहब के पास में ही हिरासत में लिया जाना, औरंगजेब की काल-कोठरी में डाल देना, मुगल सेनापति और गुरु तेगबहादुर के बीच चर्चा, गुरु का उत्तर कि वे धर्म-परिवर्तन में विश्वास नहीं करते, मतिदास, दयालदास और सतिदास की शहादत, मतिदास को आरे से चीरकर मारना, दयालदास को तेल की कड़ाह में डालना और सतिदास को जलाकर मारना फिर भी गुरु का बैखौफ रहना, दिल्ली के चांदनी चौक में गुरु तेगबहादुर के सिर को कलम कर देना, चारों तरफ भगदड़ मचना, आँधी-तूफान में लखीदास नामक व्यापारी द्वारा गुरु की लाश को अपनी झोंपड़ी में रखकर जला देना (दिल्ली में आज वहाँ रकाबगंज गुरुद्वारा है) गुरु को सिर सिक्ख जैता के हाथ लग जाना (जैता रघ्रेंटा नामक निम्न जाति का था) गुरु के शीश को लेकर जैता का आनन्दपुर पहुँचना, आनन्दपुर साहब में हाहाकार मचना, गोविन्दराय द्वारा मोर्चा संभालना, पंथ के शिष्यों और सिपाहियों को संबोधित करना, वीरता और शहादत का सन्देश देना, गुरु की शहादत पर कवित्त सुनाना, जैसी ऐतिहासिक घटनाओं के साथ उपन्यास का अंत हुआ है। इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में जहाँ एक तरफ गुरु गोविन्दराय के जन्म से लेकर उनके किशोरवस्था तक की घटनाओं को लिया गया है तो दूसरी ओर उनकी शहादत की कथा को लिया गया है। इस प्रकार यह कथा गुरु गोविन्दराय के उदय और गुरु तेगबहादुर के अस्त की कहानी है।

'का के लागूं पांव' उपन्यास ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। अतः उसकी भाषा भी अपने देश काल के अनुरूप है। उसमें सिक्खों के नौवे गुरु तेगबहादुर तथा दसवे गुरु गोविन्दसिंह की जीवनगाथा को लिया गया है। अतः उसमें अनेक शब्द पंजाब की पृष्ठभूमि के अनुरूप मिलते हैं। यथा-असी, तुसी, बख्शो, कबीला, जच्चा-बच्चा, पुत्तर, लंगर, संगत-पंगत, किरपाण, किरान आदि आदि।[101] गुरु तेगबहादुर लम्बे अरसे तक बंगाल में भी रहे हैं, अतः कुछ बंगला शब्दावली भी उपन्यास में आई है, जैसे-आमि, पोढ़ते, पारि, आपनि, बोलनेन ताई, पोर्याप्त, भालो लागे, पुत्तेर, आपनार, होये छे, आम्मोदेर, साधुवाद आदि-आदि।[102] गुरु तेगबहादुर और गुरु गोविन्दसिंह का समय मुगलकालीन शासन का समय रहा है। अतः उसमें अरबी-फारसी के शब्द बहुतायत से पाए गए हैं। यथा इबादत, इल्हाम, महरूम, काफिर, नियामत, तिजारत, आफताब, हुक्म-ऊदूली, हिफाजत, तवज्जह, रुख्सत, रहनुमा, बेतरतीब आदि-आदि।[103] डॉ. भगवतीशरण मिश्र के अन्य उपन्यासों की भाँति प्रस्तुत

उपन्यास में भी संस्कृत बहुल भाषा का प्रयोग हुआ है। अतः उसमें अनेक संस्कृत शब्द उपलब्ध होते है। यथा-खचित, जलपूरित, वासस्थल, वेष्टित, पाटल-पुष्प, वक्रदृष्टि, हृतपटल, कृष्णकुंतल, प्रत्युत्पन्नमतित्व, धर्मोन्माद, प्रेमोन्माद, वागाडंबर, सलिलवाहिनी, चिनांशुक, मेघाच्छन्न, नारिकेल, चन्दनचर्चित, श्रान्त-क्लान्त, मूषक, अनावृत्त, आप्यायित, धर्मच्युत, ध्वस्तप्राय आदि-आदि।[104]

उपन्यास में अनेक सशक्त विशेषण उपलब्ध होते हैं। जैसे-बंकिम वीथियाँ, उर्ध्वाकार पंक्तियाँ, जलपूरित, मंगलघट, फौलादी ताकत, अनन्त दीपशिखाएँ, आध्यात्मिक उत्तेजना, राष्ट्रीय अस्मिता, अटल पारस्परिक विश्वास, इल्हामी करामत, इल्हामी शक्तियाँ, खुदाई नूर, निश्चयात्मक स्वर, स्वर्णिम बिम्ब, आकाशचुम्बी आवास, समुद्री पादप, प्रश्नपूरित आँखें, समेकित कंठ, भुनभुनाती औरतें, बेरहम लहरें, विवेकहीन विनाश, बनैले फूल, पाषाणी बूत, अप्रत्याशित आशंका, अड़ियल रुख, मनहूस मौन, प्रश्न भरी आँखें, वस्त्रवेष्टित वांसनिर्मित टोकरियाँ, उच्छृखल पर्वतीय स्रोत,अश्रुपूरित आँखें, अर्थपूर्ण मुस्कान, उपेक्षाजनित पीड़ा, प्रतीकात्मक प्रतिदान, चट्टानी मनोबल आदि-आदि।[105]

विशेषणों की तरह लेखक ने अनेक स्थानों पर विशेषण पद-बंधों का भी प्रयोग किया है जिनमें से कुछेक का उल्लेख किया जा रहा है। यथा - चित्र खचित, जलपूरित मंगलघट; श्रेष्ठियों की गगनचुम्बी अट्टालिकाओं से सज्जित, धन-धान्यपूर्ण धर्मपरायण धरती; झिलमिलाती, ज्योति-लुटाती दीप-पंक्तियाँ; श्वेत वस्त्र और श्वेत पुष्पों से सज्जित तथा केश विन्यास से युक्त सुमुखी बंग महिलाएँ; छोटी-बड़ी अभेद्य जल-चट्टानें; मस्ती में उफनता, कूदता-फांदता ब्रह्मनद; भोला-भाला वाणीविहीन शिशु; उपेक्षित और अपमानित शोषित जीवन; मुट्ठी भर बीमार, थकी अधमरी सेना; बालकों की सुसज्जित रंग-बिरंगी-वस्त्रावेष्टित और कृत्रिम अस्त्र-शस्त्रधारी पंक्तियाँ; कुद्ध शास्त्र-वेत्रा और वेदज्ञ पंडित आदि।[106]

डॉ. भगवतीशरण मिश्र ने प्रस्तुत उपन्यास में कुछ आलंकारिक रूपकों का भी प्रयोग किया है, जैसे भय और उत्पीड़न की बैसाखियाँ, पलकों के कपाट, प्रश्न-बाण, शब्दों की कैंची, परिस्थितियों की आग, सपनों का शीशमहल, स्मृति-मंजूषा, इच्छाओं की अग्नि, निर्णय की शिला आदि-आदि।[107]

अन्य उपन्यासों की तरह कहावतों का समुचित प्रयोग मिलता है। यथा-प्रथम ग्रासे मक्षिकापातः; स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान सर्वत्र पूज्यते; कांटे से ही कांटा निकलता है; या परमेश्वर तेरे घर में देर है, अंधेर नहीं; एक तो करेला तीता दूजे

नीम चढा; अन्धा क्या चाहे? दो आँखें; झूठ की टांगे नहीं होती; मन चंगा तो कठौती में गंगा; मूल से ब्याज अधिक प्रिय होता है; साँप भी मरे और लाठी भी नहीं टूटे; बहता नीर और चलता फकीर ही भला, फूल जहाँ खिलेंगे, भौरें वहीं मंड़राएंगे; हंसो के झुंड में बगला; शनैः पंथा, शनैः कंथाः, शनैः पर्वत लंघनम्; होनहार बिरवान के होत चीकने पात आदि-आदि।[108]

कहावतों की तरह मुहावरों के भी साभिप्राय प्रयोग मिलते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में से हमने करीबन 265 जितने मुहावरें निकाले हैं जिनमें से कुछेक का उल्लेख यहाँ कर रहे हैं - इन्द्रियों का कर्णवत् हो आना, इति श्री हो जाना, कीर्ति में चार चांद लगना, एक ढेले से दो शिकार करना, पीठ में छुरा भोंकना, बांछे खिल जाना, साँप सूंघ लेना, किसी से उन्नीस पड़ जाना, दाल-भात में मूसलचन्द बनना, रेत से तेल निकालना, घोड़े बेचकर सोना, पानी पिलाना, बाल की खाल निकालना,दांतों तले उंगली काटना, पैरों में पंख लग जाना, मन फूलकर कुप्पा हो जाना, चट्टान से सिर टकराना आदि-आदि।[109]

कहावत और मुहावरों की तरह लेखक ने अनेक सूक्तियों का प्रयोग भी किया है। कुछेक का उल्लेख यहाँ कर रहे हैं - (01) शक्तिमान शत्रु से लोहा लेना है तो शक्ति और ऐश्वर्य संजोना ही पड़ेगा। (02) महान पुरुषों के क्रिया-कलाप प्रायः मिलते-जुलते है। (03) प्रौढावस्था की सन्तान तो प्राणों से भी बढ़कर प्रिय होती है। (04) आरत के हिरदय नहीं चेतू। बार-बार कहि आपन हेतू। (05) विश्रामपूर्ण जीवन, मरण से अधिक कुछ नहीं। (06) प्रेम और भक्ति दोनों भावुकता पर ही पलती है। बुद्धि का साम्राज्य वहां समाप्त हो जाता है। (07) हीरे को जितना तराशो उतनी ही अधिक चमक उसमें आती है। (08) असफलता ही सफलता की जननी है। (09) एक योग्य शिक्षक को पाकर शिक्षक भी अपने को सौभाग्यशाली समझता है। (10) अच्छी बात शव (लाश) के मुँह से भी निकले तो उसे ग्रहण कर लेनी चाहिए।[110]

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास की भाषा हर लिहाज से समृद्ध और सम्पन्न है ऐसा असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है।

गोबिन्द गाथा

'गोबिन्द गाथा' डॉ. भगवतीशरण मिश्र की पूर्व कृति 'का के लागूं पांव' की दूसरी तथा अन्तिम कड़ी है। प्रस्तुत उपन्यास के मुखपृष्ठ पर लेखक की टिप्पणी है कि

''यूं दोनों उपन्यास अपने में स्वतंत्र हैं। जहाँ 'का के लागूं पांव' में उनकी नौ वर्ष तक की आयु की कथा थी, वहीं इसमें उससे आगे की गाथा है, निर्वाण तक की।''[111] उपन्यास के आमुख में भी इसी बात की ओर संकेत करते हुए लेखक ने लिखा है कि ''किंतु का के लागु पांव नींव है। नींव के बिना अट्टालिका नहीं निर्मित होती। नींव जितनी ही गहरी और सशक्त होगी, अट्टालिका उतनी ही ऊँची-गगनचुम्बी। अट्टालिका को जानने के लिए नींव से परिचय भी आवश्यक है। यह है 'का के लागूं पांव' की प्रासंगिकता। यद्यपि जैसा कहा गया, वह गुरु के नौ वर्ष तक के जीवन को ही रूपायित करती है।...... एक तरह से 'का के लागूं पांव' जहाँ पितृ पक्ष की कहानी है, वहीं 'गोबिन्द-गाथा' पुत्र-पक्ष की।''[112]

मिश्रजी ने इस उपन्यास में गुरु गोबिन्दसिंह के गुरु-गद्दी पर आसीन होने से लेकर उनके अवसान तक के विवरण को यथार्थपरक ढंग से प्रस्तुत किया है। उपन्यास के प्रथम क्लैप पर उपन्यास के सन्दर्भ में टिप्पणी दी गई है- ''सिखों के दसवें गुरु गोबिन्द सिंह के आदर्शपूर्ण जीवन और उनकी वीरता, धीरता तथा संघर्ष की लोमहर्षक अमरगाथा उपन्यास के रूप मे। गुरु के बहुआयामी व्यक्तित्व का चित्रात्मक विवरण जिसमें औपन्यासिकता और इतिहास की प्रामाणिकता दोनों का मनोहर संगम मिलता है- सम्मोहक और प्रवाहपूर्ण शैली में।''

इस उपन्यास के अंतर्गत लगभग एक सौ छब्बीस पात्र आएँ है। इनमें अधिकांश पात्रों का नामकरण हुआ है। इस उपन्यास में मुख्यपात्र है- गोबिन्दसिंह, गूजरी देवी, भीमचन्द, अजमेरचन्द, वजीर खां, राजा रामराय, सुन्दरी देवी, दूनीचन्द, फत्तेहशाह, मेदिनी प्रकाश, जीतोजी, वीर बुद्धशाह, रामराय, महन्त किरपालचन्द, दिलावर खां, साहिबाकौर, अजीतसिंह, सईदबेग, जुझारसिंह, जोरावर सिंह, फतहसिंह, मुअज्ज़म आदि। प्रस्तुत उपन्यास के पात्रों के सन्दर्भ में उपन्यास के आमुख के अंतर्गत लेखक का कथन है- ''यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि यद्यपि यह पुस्तक औपन्यासिक शैली में लिखी गई है पर ऐतिहासिक उपन्यास की मर्यादा को अक्षुण्ण रखने की दृष्टि से इसके संयोजन में एक भी काल्पनिक पात्र या घटना को नहीं लिया गया है। सब कुछ यथार्थाधारित है। शैली, शिल्प अथवा प्रस्तुतीकरण की विधा लेखकीय है।''[113]

प्रस्तुत औपन्यासिक कृति नब्बे परिच्छेदों में विभाजित है। इस उपन्यास को अगर तीन भागों में विभाजीत किया जाए तो प्रथम भाग के परिच्छेदों में गोविन्दसिंह का विधिवत् अभिषेक, उनके द्वारा पंथ को सुदृढतम करना, उनके शादी-ब्याह, काव्य-रचना तथा रामराय का प्रसंग आदि बातों को समेकित किया गया है। मध्य भाग में युद्धों का विवरण, खालसा पंथ की स्थापना एवं पंथ के नियमों का रेखांकन

किया गया है, तो अन्तिम भाग के परिच्छेदों में औरंगजेब तथा पहाड़ी राजाओं की धोखेबाजी, गुरु-पुत्रों की शहादत, गुरु का एकान्त संघर्ष, खिदराना लड़ाई, गुरु द्वारा औरंगजेब को प्रेषित जफरनामा, पुनः पंथ-प्रचार एवं दक्षिण के लिए रवाना तथा उनकी मृत्यु आदि घटनाओं को यथार्थतः ढंग से उकेरा गया है। जिसका हम निम्नांकित रूप से आलेखन कर रहे हैं।

जैसा कि पहले निर्दिष्ट किया गया है 'गोबिन्द गाथा' उपन्यास नब्बे परिच्छेदों में विभक्त है। प्रथम दस परिच्छेदों में निम्नलिखित घटनाओं को आमेज किया गया है- गुरु तेगबहादुर की शहादत के पश्चात् सबका गुरु गोविन्दराय की तरफ श्रद्धावनत् होना, गोविन्दराय द्वारा कर्तव्य की बागडोर थामना, आनन्दपुर का शक्ति, सम्पन्नता और भक्ति का केन्द्र बनना, आनन्दपुर साहब का व्यावसायिक विकास, युद्ध सामग्रियों और असली नस्ली घोड़ो की आयात, गुरु गोविन्दराय के नेतृत्व में एक नए धर्मपरायण राष्ट्र का उदय, 29, 1676 को गोविन्दराय का विधिवत् अभिषेक, गोविन्दराय के भक्तों का दूर-दूर से आना, दूनीचन्द नामक भक्त द्वारा एक विशाल पशमीने तम्बू का दान करना, बंगाल के गौरीपुर के जमींदार को गुरु तेगबहादुर के आशीर्वाद से रतनराय नामक पुत्र की प्राप्ति होना, गोविन्दराय के अभिषेक में उसके द्वारा भी शस्त्रास्त्रों तथा उच्च कोटि के अश्वों और एक प्रशिक्षित हाथी की भेंट, गुरु गोविन्द राय का सिक्ख धर्म को वीर धर्म में परिवर्तित करने का निर्णय, एक बहुत बड़े नगाड़े का निर्माण, इस रणजीत नगाड़े के कारण इर्द-गिर्द के जसवाल, गढवाल, गूलेर, नादौन, मण्डी, चम्बा, कहलूर आदि पहाड़ी राजाओं को इर्ष्या होना, कहलूर के राजा भीमचन्द द्वारा दूत को आनन्दपुर भेजना, राजा भीमचन्द को आमन्त्रित करने का निर्णय, आनन्दपुर में विद्वानों, कवियों और कलाकार को निमंत्रित करना, उन कवियों में हिन्दू और सिक्ख कवियों के साथ आलम जैसे मुसलमान का भी होना, महाभारत के कई पर्वों का अनुवाद, 18 वर्ष की आयु में 'चण्डी दीवार' नामक रचना को पंजाबी में प्रस्तुत करना, पंजाबी की उत्कृष्ठ कृतियों में उसकी गणना, 'चण्डीदीवार' एक वीर रस से ओतप्रोत रचना, संस्कृत की शिक्षा प्राप्त करने गुरु का कुछ अनुयायियों को वाराणसी भेजना, वाराणसी की ब्राह्मण मंडली द्वारा उनका अस्वीकार क्योंकि वे शुद्र थे - गोविन्दराय की युक्ति, ज्ञानार्थियों को साधुवेश में भेजना, वाराणसी से लौटे हुए संस्कृत ज्ञाताओं द्वारा दूसरों को संस्कृत सिखाना, गुरु अर्जुनदेव की 'मंजी व्यवस्था' में मसंद की महत्वपूर्ण भूमिका होना, कालांतर में मसंदों का विलासप्रिय होना, गुरु के दसमांश को स्वयं ही हड़प जाना, गुरु गोविन्दराय की व्यवस्था कि अनुयायी सीधे ही दसमांश को गुरु गद्दी तक पहुँचावे,

असहाय मसंदो का माता गूजरी देवी से मिलने का उपक्रम आदि-आदि।[114]

गूजरी देवी द्वारा पुत्र गोविन्द को मसंदों के बारे में पूछना, मसंदो के पंथ विरोधी कारनामों से परिचित होकर मसंदों को बुरी तरह लताड़ना, लाहौर के रामशरण की पुत्री सुन्दरी असामान्य रूप-गुण से सम्पन्न, सुन्दरी को मिलकर गूजरी देवी की प्रसन्नता, गुरु गोविन्दराय द्वारा एक नया लाहौर बनाने की परिकल्पना,गुरु का लाहौर से उसका विख्यात होना, गोविन्दराय और सुन्दरी के विवाह का सम्पन्न होना, कहलूर के राजा भीमचन्द का आनन्दपुर में आगमन, मैत्री के मूल्य के रूप में बहुमूल्य तम्बू और करामाती हाथी की भेंट मांगना, गुरु का उत्तर कि भेंट की चीज भेंट में नहीं दी जाती, भीमचन्द का असंतुष्ट लौटना, भीमचन्द द्वारा पहाड़ी नरेशों को भड़काना, भीमचन्द के पुत्र अजमेरचन्द का गढवाल नरेश फत्तेहशाह की बेटी से सम्बन्ध निश्चित होना, भीमचन्द को पुनः हाथी और तम्बू मंगवाने का अवसर मिल जाना, माता गूजरी देवी, मामा किरपालचन्द तथा पत्नी सुन्दरी देवी से विचार-विमर्श, सबकी राय कि भय के आगे झुकना सिक्ख धर्म नहीं है - भीमचन्द को गुरु का नकार में उत्तर,भीमचन्द द्वारा अन्य राजाओं को तलब करना, चम्बा नरेश द्वारा युद्ध की बात को चतुराई से उड़ा देना, आनन्दपुर का राहत की सांस लेना जैसी घटनाओं को परिच्छेद ग्यारह से लेकर परिच्छेद बीस तक वर्णित किया गया है।[115]

उसके पश्चात् परिच्छेद इक्कीस से तीस तक में निम्नलिखित घटनाओं को समाविष्ट किया गया है। काव्य-प्रतिभा के प्रस्फुटन हेतु सिरमौर के पहाड़ी राजा मेदिनी प्रकाश का उनकी राजधानी नाहन आने का आमंत्रण, नाहन एक रमणीय और दर्शनीय स्थान, गुरु की नाहन जाने की योजना, एक वृद्ध सिक्ख का बेटी जीतोजी के साथ आना, जीतोजी का कथन कि वह मन ही मन गुरु को वर चुकी है, गोविन्दराय का दुविधाग्रस्त होना, सुन्दरी देवी द्वारा स्वीकृति दे देना, माता गूजरी देवी का विरोध किन्तु अन्ततः जीतोजी की समर्पण भावना से प्रभावित होकर गुरु माता द्वारा स्वीकृति देना, सिरमौर नरेश मेदिनी प्रकाश के आमंत्रण पर गुरु का नाहन प्रस्थान, नाहन से छब्बीस मील की दूरी पर एक सुरम्य स्थान का होना, गुरु के पांव वहाँ टिक गए अतः 'पांवटा' के रूप में उसका नामकरण होना, मेदिनी प्रकाश की गुरु-भक्ति, किले और गुरुद्वारा का निर्माण, पांवटा में 'कृष्णावतार' नामक काव्य की रचना, पांवटा में गुरु की काव्य-प्रतिभा परवान पर चढना, 271 छंदवाली 'अकालस्तुति' नामक रचना का प्रणयन, 'अकाल स्तुति' में चण्डी वंदना के छंदों को रखना, पांवटा में गुरु की एक निश्चित दिनचर्या, प्रातः काल नित्य निवृत्त हो प्रार्थना में उपस्थित होना, तत्पश्चात् आध्यात्मिक प्रवचन, राष्ट्रीय भावना को जागृत करना,

सम्मिलित कीर्तन-भजन, भाटों और कवियों का काव्य -पाठ, तत्पश्चात् यमुना किनारे किसी रमणीय स्थान ढूंढकर काव्य-रचना करना, भोजन के बाद आखेट और अस्त्र-शस्त्र संचालन, संध्या के कलेवे के बाद पुनः दरबार का सजाना और प्रवचन, सोने से पूर्व लंगर, इस प्रकार पांवटा में गुरु की कवित्वशक्ति का पूर्णरूपेण खिलना, अकाल स्तुति के पश्चात्, 'जापुजी' साहब की रचना, मेदिनी प्रकाश द्वारा श्रीनगर (गढवाल) के राजा फत्तेहशाह को निमंत्रित करना, गुरु के साथ आखेट जाना, अचानक प्रकट हुए शेर से मेदिनी प्रकाश और फुत्तेहशाह दोनों का भयभीत होना, अकेले गुरु द्वारा शेर को मौत के घाट उतार देना, फत्तेशाह का उनका मुरीद हो जाना आदि-आदि।[116]

तत्पश्चात् गुरु द्वारा फत्तेहशाह और मेदिनी प्रकाश के बीच मित्रता करवाना, गुरु और फत्तेहशाह के बीच संवाद, पांवटा से पच्चीस मील की दूरी पर साढूर नामक स्थान से एक अच्छे-खासे जागीरदार एवं पहुँचे हुए फकीर पीर बुद्धशाह का गुरु के दर्शनों के लिए आना,गुरु के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर पाँच सरदार पठान और पाँच सौ सिपाही गुरु की सेवामें सोंपकर अपने स्थान वापिस जाना, गुरु गोविन्दराय की 'ज्ञान-प्रबोध', 'चण्डी चरित्र', 'चौबीस अवतार' और 'चारित्रोपाख्यान' आदि कृतियों की महत्वपूर्ण बातों का उल्लेख, फत्तेहशाह की पुत्री के विवाह प्रसंग पर गुरु द्वारा अपने दीवान नवचन्द के हाथों बहुमूल्य उपहार भेजना, फत्तेहशाह का प्रसन्न होकर सब राजाओं को दिखाना, भीमचन्द द्वारा मौके का फायदा उठाकर फत्तेहशाह तथा अन्य राजाओं को उकसाना, फत्तेहशाह के नहीं डिगने पर उसे या गुरु में से एक को चुनने के लिए कहना, फत्तेहशाह का डगमगाना और भीमचन्द की योजना में साथ देने का वादा करना, नवचन्द द्वारा गुरु को आनेवाले संकट का पता चलना, सैन्य शक्ति को संगठित करना, रामराय की कहानी, रामराय और गोविन्दराय के बीच संवाद, मसन्दों द्वारा जलाकर रामराय की नृशंस हत्या करने पर गोविन्दराय का देहरादून पहुँचना, अपराधियों ने जिस रूप में रामराय की हत्या की थी उसी रूप में दण्ड देना, गुरु का पांवटा की ओर प्रस्थान, 18 सितम्बर 1688 भंगनी के युद्ध में गोबिन्दराय की जीत, इस युद्ध में बुआ के पाँच लड़कों में से दो तथा तीन पहाड़ी राजाओं की मौत होना, गुरु द्वारा पीर बुद्धशाह को प्रमाणपत्र, एक कटार और अपनी आधी पगड़ी से सम्मानित तथा आधी पगड़ी महन्त किरपालचन्द को देना, गुरु का पांवटा से आनन्दपुर की ओर प्रस्थान करना, पीर बुद्धशाह के स्थान सधौरा पहुँचकर आभार प्रकट करना, रायपुर राज्य की विधवा रानी द्वारा गुरु का स्वागत एवं हीरे, जवाहरात, शस्त्रास्त्र तथा अच्छी नस्ल के घोड़े भेंट स्वरूप देना, गुरु द्वारा राजकुमार

को आशीर्वाद एवं उपदेश, आनन्दपुर में चार नए किले बनवाना औरंगजेब का आदिलशाही, निजामशाही और मराठों से लड़ने में व्यस्त होना, राजपूतों और जाटों का विद्रोह, खां नामक मुगल सरदार को लूटना, पहाड़ी राजाओं का मुगल सल्तनत से अलग हो जाना, भीमचन्द द्वारा गुरु के सामने एकता का प्रस्ताव रखना, गुरु द्वारा स्वीकार करना, 20 मार्च 1691 नादौन युद्ध में भीमचन्द के नेतृत्व में पहाड़ी राजाओं की सेना तथा गुरु गोविन्दराय के नेतृत्व में सिक्ख सेना द्वारा विजयश्री को प्राप्त करना आदि घटनाओं का ब्यौरा इकतीस से चालीस परिच्छेद तक दिया गया है।[117]

इकतालीस से पचास परिच्छेद तक औरंगजेब की पंजाब के सूबेदार दिलावर खां को पत्र द्वारा धमकी देना, दिलावर खां के पुत्र रुस्तम खां की योजनानुसार रात के अंधेरे में कूच करना, सतलज की बाढ़ के कारण बहुत सारे मुगल सिपाही, तम्बू, हाथी, घोडें आदि का बह जाना, बाकी बचे सिपाहियों का भाग खड़े होना, रुस्तम खां की लाचारी, गुरु का अपने सिपाहियों को सम्बोधित करना कि 'अकालपुरुष द्वारा हमारी रक्षा हुई इसलिए धर्म विरुद्ध कोई आचरण न करे।' हुसैन खां द्वारा दो हजार चुन्निदा सिपाहियों को लेकर आनन्दपुर पहुँचने से पूर्व रास्ते में आतंक का वातावरण खड़ा करना, गढ़वाल, मंडी, काहनगढ के राजाओं के हौसले पस्त होना, फत्तेहशाह और अजमेरचन्द का हुसैन खां के साथ गुरु के विरुद्ध 20 फरवरी 1696 की लड़ाई में भाग लेना, गुरु को गोपाल का पत्र मिलना, भाई संगीता के नेतृत्व में तीन सौ बहादुर सिपाहियों को गोपाल की सेवा में भेजना, गोपाल और रामसिंह के सिपाहियों तथा सिक्ख सिपाहियों द्वारा आक्रमणकारियों के छक्के छुड़ा देना, गुरु का मन ही मन अकालपुरुष को धन्यवाद देना, गुरु का प्रवचन-अकाल पुरुष को भक्ति और प्रेम से बस में करने की बात, कर्म के बिना धर्म असहाय, आदि गुरु का उपदेश 'कीरत करो और बांट खाओ', धर्म और कर्म एक साथ साधने का गोविन्दराय का उपदेश - गोपालराय द्वारा बहुमूल्य उपहार एवं आठ अरबी घोड़े भेजना, गुरु का कथन-मुख से 'कीरत' करो और हाथों से 'करम'।, दिलावर खां द्वारा आनन्दपुर में पुनः अभियान के लिए जुझारसिंह पर पसंदगी, जसवाल के राजा रामसिंह द्वारा भालण नामक स्थान पर उसको ललकारना, जुझारसिंह का मारा जाना, अकाल पुरुष के प्रति कृतज्ञतावश गुरु की आँखों में अश्रु भर आना, औरंगजेब द्वारा मुअज्ज़म को भेजना, उसका पहाड़ी राजाओं एवं प्रजा में कहर बरपाना, गुरु का प्रवचन द्वारा आनन्दपुर के सिपाहियों के मनोबल को टिकाए रखना, गुरु की अपनी रणनीति के अनुसार सिपाहियों और नागरिकों को किले में बंद करवाना, मुगल सरदार द्वारा नगर को खाली पाकर खूब लूट-खसोट करना, रात को आनन्दपुर में खेमा डाले आराम से सो

जाना, रात के अंधेरे में गुरु और उनके बहादुर सिपाहियों द्वारा गोले-बारूद और तोपचे के साथ धावा बोलना, सिपाहियों को घेरकर बारूदी सुरंगे बिछा देना, आनन्दपुर का पुनः बच जाना, मुअज्ज़म का मिर्झाबिग को पूरी तैयारी के साथ भेजने का अभियान, गुरु का रणनीतिके स्थान पर राजनीति का सहारा लेना, गुरु दरबार के कवि नन्दलाल के समझाने पर मुअज्ज़म का गुरु से सुलह करने के लिए तैयार होना, गुरु का मुगलों की ओर से निश्चिंत होकर अपना ध्यान कीर्तन-भजन, संगत-पंगत, युद्धाभ्यास तथा काव्य-रचना की ओर लगाना, 'विचित्र नाटक' आत्मकथात्मक कृति का सृजन करना, (मनीसिंह द्वारा संगृहीत 'दशमग्रन्थ' की प्रमाणित प्रति का प्रकाशन सन् 1895 - कुल 1428 पृष्ठ, गुरु की 16 रचनाएँ संगृहीत जिनमें 'जापुजी' प्रथम और 'हिकायते' अन्तिम) सन् 1699 अर्थात् 1756 की वैशाख पूर्णिमां के दिन गुरु का नया रूप और परीक्षा की बात करना, एकत्रित समुदाय को अपने सिर देने का आह्वान, लाहौर के दयाराम खत्री, दिल्ली का धरमदास जाट, द्वारिका का मोहकमचन्द छिम्बा विदर का नाई जाति का साहिबचन्द, जगन्नाथपुरी का झींवर जाति का हिम्मतराय का आना, (तम्बू में पहले से तैयार पाँच बकरों के सिर काटना) इन पाँचों को 'पंच पिचारो' के नाम देना, गोविन्दराय की घोषणा करना कि प्रत्येक सिक्ख 'सिंह' कहलाएगा, उस दिन से गोविन्दसिंह नाम धारण करना, एक विशेष आयोजन में बड़े से लौह के पात्र में खड्ग द्वारा मथे हुए पानी में पताशे डालकर घौल तैयार करना, इसे अमृत का नाम देना, इसमें तलवार की धार का तेज, इस्पाती शक्ति साथ ही मिठास और संवेदनशीलता होने की बात गोविन्दराय द्वारा कहना, अमृत को छकनेवालों का खालसा पंथ का अनुयायी बनना - जैसा कि मिश्रजी ने उपन्यास के आमुख में ही शब्दांकित किया है कि "खालसा पंथ की स्थापना गुरु के जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि है। यह इनकी मौलिक उद्भावना और असामान्य कल्पना तथा विलक्षण संगठन-शक्ति का ही प्रतिफल है।"[118] - सिक्ख धर्म पूरी तरह से वीर धर्म बनना, पंथ का प्रत्येक अनुयायी सिंह उसकी कोई जाति नहीं होना, पंच पिचारो को खालसा पंथ में दीक्षित करना, पंचपिचारो द्वारा गुरु को दीक्षित करना,पंच पियारे के बाद पंच मुक्ते उसके बाद जत्थे के जत्थे अमृत छककर खालसा के अनुयायी होना, कुछ दिनों में बीस हजार की दीक्षा लेना, एकेश्वरवाद और मात्र अकाल की उपासना करना, पंथ के अनुशासन के लिय कुछ नियम बनाना, पाँच ककार का प्रचलन - केश, कंघा, कड़ा, कच्छा और कृपाण - खालसा पंथ के कुछ नियम आदि घटनाओं एवं प्रसंगो का विवरण मिलता है।[119]

परिच्छेद इक्यावन से साठ तक निम्नलिखित घटनाओं का आलेखन हुआ है। गुरु

द्वारा पर्वतीय राजाओं को पंथ में सम्मिलित होने का आमंत्रण देना, राजाओं का कायरो-सा उत्तर देना, केशवदासके पुत्र कुवरेश को गुरु द्वारा आश्रय प्रदान कर निश्चिंत होकर काव्य साधना करने का आदेश देना, पंच ककारों के कारण आनन्दपुर कुटीर उद्योगों का केन्द्र बन जाना, गुरु को अकर्मण्य व्यक्ति से घृणा होने के कारण एक युवक के कोमल हाथों से पानी पीने के लिए मना करना, वृद्धा के तीन में से दो पुत्रों का पूर्व युद्धो में शहादत को प्राप्त होना, अस्वस्थ ओर बिछावन पर पड़े हुए तीसरे पुत्र के स्वास्थ्य के लिए गुरु की अकाल पुरुष से प्रार्थना करना, गुरु की आज्ञा से विवाह हेतु गाँव गए हुए जोगासिंह का गुरु की परीक्षा में सफल होना, चर्चा विचारणा के बाद बीबी देवां के लिए गुरु द्वारा 'क्वाँरा डोला' का प्रस्ताव रखना, अमृत छककर बीबी साहिबा देवां का साहिब कौर बन जाना, गुरु और साहिब कौर के बीच संवाद, पाटलिपुत्र के संगी-साथी, अभिभावकों के साथ गुरु के अनेक सप्ताह आनन्द में व्यतीत होना, पुनः पर्वतीय राजाओं का शंकाग्रस्त होना, बलियाचंद और आलमचंद की गुरु की हत्या करने की गुप्त योजना बनाना, गुरु के तीरों से बलियाचन्द की गर्दन और आलमचंद की बाँह कट जाना, पर्वतीय राजाओं का सरहिन्द के नवाब पर नमक-मिर्च डालकर फरियाद भेजना, नवाब द्वारा आलमगीर को फरियाद पहुँचाना, आनन्दपुर को नेस्तोनाबूद करने के लिए पर्वतीय राजाओं की बीस हजार और मुगलों की दस हजार सेना का प्रस्थान, सिक्खों की छः सात हजार सेना द्वारा जबरदस्त मुकाबला करना, गुरु द्वारा पाइन्द खां की मौत तथा सेनापति दीनबेग का घायल होना, 26 जून 1700 के इस युद्ध में सिक्खों को विजय प्राप्त होना, पर्वतीय राजाओं द्वारा पुनः युद्ध में गुरु पुत्र अजीतसिंह का पराक्रम और विचित्तर सिंह द्वारा मदमस्त हाथी को भगाना, घमण्डचन्द की मृत्यु होना, आखिर में सिक्खों की विजय आदि-आदि।[120]

तत्पश्चात् पहाड़ी राजाओं का प्रपंच, गुरु को आटे की गाय द्वारा पत्र प्रेषित करना, गुरु का कुछ समय तक आनन्दपुर खाली करने की बात मानकर कीरतपुर के पास तम्बू डालकर रहना, तोपची द्वारा गुरु को मारने के लिए लिया गया निशाना चूक जाना, गुरु द्वारा उसकी और उसके भाई की मृत्यु होना, (इस जगह दोनों तोपचियों की कब्र बनी हुई है और इसका नाम है - 'स्याही रिब्बी' तथा शहीद सेवक की स्मृति में गुरुद्वारा) सरहिंद के सूबेदार वजीर खां की सहायता से पहाड़ी राजाओं का आक्रमण, गुरु का रात के अंधेरे में सलाहीचन्द के राज्य बसाली पहुँचना, सलाहीचंद की सेना और गुरु के सैनिकों द्वारा अजमेरचन्द को खदेड़ देना, गुरु का पुनः आनन्दपुर लौटना, होशियारपुर के एक वृद्ध ब्राह्मण की नवविवाहिता पुत्रवधू को

पठानों द्वारा उठा ले जाना, गुरु पुत्र अजीतसिंह द्वारा पठानों को मौत के घाट उतारकर ब्राह्मण पुत्रवधू को घर पहुँचाना, बसाली की लड़ाई के पश्चात् अजमेरचन्द और पहाड़ी राजाओं द्वारा गुरु की ओर सन्धि के लिए हाथ बढ़ाना, गुरु की मालवा-यात्रा, अनेक लोगों का खालसा में सम्मिलित होना, मदननाथ नामक योगी से वाद-विवाद, मंडी, कहलूर और हंडूर के राजाओं का सन्धि प्रस्ताव, दूत द्वारा अजमेरचन्द को गुरु के विरुद्ध भड़काना, अलिफ खां को प्रतिदिन एक हजार सिक्के देने का वचन देकर उसके पाँच-पाँच हजारी मुगल सिपाही सालार के साथ सिक्खों पर आक्रमण करना, सईद बेग और गुरु की सेना के सामने पराजित होना, सईद बेग का आजीवन गुरु की सेवा करना और अनेक युद्धों में सिक्खों की ओर से लड़ना, औरंगजेब द्वारा गुरु के विरुद्ध लड़ने के लिए भेजे हुए सैद खां का साढौर के बहनोई बुद्धशाह की बातों से प्रभावित होना, 23 मार्च 1704 के युद्ध में आधे मन से सैदखां का आनन्दपुर की ओर प्रस्थान करना, सईद बेग और मेमू खां की शहीदी से प्रभावित होना, गुरु के प्रति श्रद्धा से भरकर उसका हथियार डाल देना, औरंगजेब का दक्कन में 25 साल बरबाद होना, मराठों की बढ़ती ताकत, अजमेरचन्द द्वारा औरंगजेब को उकसाना, सिक्खों को कुचल देने के लिए सरहिंद के सूबेदार वजीर खां के नेतृत्व में कश्मीर के सूबेदार जबरदस्त खां और लाहौर के सूबेदार दिलावर खां, पहाड़ी राजा, धर्मयुद्ध के नाम पर मुगलों के जानी दुश्मन पठान तथा गूजरों और राघड़ो की दो लाख की सेना न 'अल्ला हो अकबर' के नारे के साथ आनन्दपुर की ओर प्रस्थित होना, सन् 1705 की बैसाखी का आनन्दोत्सव युद्धोत्सव में बदल जाना, घमासान युद्ध में दोनों पक्षों के लगभग एक हजार सैनिक ओखेत होना, कन्हैया द्वारा घायल सैनिकों को पानी पिलाने पर उसकी शिकायत करना, गुरु द्वारा उसको एक रेशमी रूमाल प्रदान कर महन्त की अपाधि देना, प्रायः एक माह तक युद्ध लम्बा खींच जाना, सिक्ख सेना का दाना-पानी के लिए मुँह ताज हो जाना, कुछ कायरों का गुरु से नाता तोड़कर रात्रि के अंधकार में छिपकर आनन्दपुर से बाहर भाग जाना, सेना की अनुशासनहीनता के कारण प्रजा का आक्रोश आलमगीर का आनन्दपुर से सेना हटाने का आदेश देना, अजमेरचन्द की गुस्ताख बातें आजिम खां और दिलावर खां की मृत्यु, एक ब्राह्मण द्वारा कारुणिक दृश्य खींचने पर गुरु-माता का द्रवित होना, गुरु के न मानने पर सहायता करने का वादा करना, ब्राह्मण द्वारा सन्धि की बात से गुरु का क्रोधित होना, गुरु माता से संवाद, माता की तर्कपूर्ण बातों से गुरु का शत्रुओं की शपथ की परीक्षा लेने की अनुमति मांगना, गुरु की शंका का सच निकलना, बादशाह सलामत की ओर से खत भेजने का अजमेरचन्द का प्रस्ताव रखना, खत पर विश्वास

कर गुरु का आनन्दपुर छोड़ना, माता, किले की स्त्रियाँ, दो छोटे बेटे, युद्ध के लिए अयोग्य व्यक्तियों को पहले रवाना करना, गुरु के साथ आलमसिंह, उदैसिंह, दयासिंह पाँचसौ सैनिक तथा उनके दो बेटे अजीतसिंह और जुझारसिंह का जाना, शत्रु पक्ष की ओर से धोखा, चमकौर नामक स्थान पर घनघोर युद्ध, अजीतसिंह और जुझारसिंह की शहादत, कच्ची गढ़ी में गुरु के अलावा सिर्फ पाँच सिक्खों का रह जाना, इन पाँचों द्वारा 'गुरुमता' की बात करना, गुरु का धरमसिंह, दयासिंह, मानसिंह के साथ रात्रि के अंधकार में भाग निकलना, प्रातः तक संतसिंह, संगतसिंह का शत्रुसेना को उलझाए रखना, अंत में दोनों की शहादत, सैनिकों द्वारा संतसिंह के सर को काटकर सरदारों के पास ले जाना, सरदारों की फटकार, नौकर गंगू द्वारा गूजरी देवी के साथ धोखा, दो गुरु-पुत्रों को वजीरखां को सौंप देना, नौ वर्षीय जोरावरसिंह और सात वर्षीय फतहसिंह को इस्लाम कबूल करवाने के लिए अनेक लोभ प्रलोभन देना, उनका टस से मस नहीं होना, दोनों भाइयों को दीवार में चीनवा देना, इस सूचना को सुनकर गूजरी देवी का मौत के शरण हो जाना, इकसठवें से लेकर अठहत्तर तक के परिच्छेदों में इन घटनाओं का आलेओखन हुआ है।[121]

तत्पश्चात् उनहत्तर से नब्बे तक के परिच्छेदों में निम्नलिखित घटनाओं का चित्रण मिलता है। चमकौर छोड़ने के बाद गुरु की भटकाव की जिंदगी, मच्छीवाड़ा जंगल में भूखे-प्यासे गुरु का भटकना, एक दिन अचानक मानसिंह, दयासिंह, धरमसिंह का मिल जाना, गुरु का गुलाबा के यहाँ आश्रय लेना, गनी खां और नबीखां द्वारा गुरु को 'ऊंच के पीर' बनाना, मुगल सरदार द्वारा रोके जाने पर काजी पीर मुहम्मद द्वारा उनके मन में खुदा का डर पैदा करना, कुछ दिन किरपालचंद के यहाँ ठहरना,बाद में रायकोट के रायकल्ला द्वारा उनका स्वागत करना, बाद में दीना पहुँचना, कांगड़ा के निवासी शमीरा, लखमीरा और तख्तमल तीनों भाई तथा भाई रूपा के बेटे धरमसिंह और परमसिंह का संगठन के काम में लग जाना, गुरु का आत्मबल लौट आना, दीना को एक फौजी अड्डे के रूप में परिवर्तित होना, गुरु द्वारा औरंगजेब को ललकारकर 'जफरनामा' दयासिंह और धरमसिंह के हाथों दक्कन में अहमदनगर पहुँचाना, सरदार वजीर खां का गुरु की बढ़ती शक्ति से आतंकित होना, दीना पर आक्रमण करने की योजना बनाना, सोढ़ीकौल द्वारा गुरु को वस्त्र दान करना, नीले वस्त्रों का हवन करना, बचे हुए वस्त्र का अन्तिम टुकड़ा मानसिंह द्वारा अपने सर पर बांध लेना, (निहंग सम्प्रदाय का प्रारम्भ यही से माना जाता है) सोढ़ीकौल द्वारा दो ऊँचे नस्ल के घोड़े भेंट करना, गैतू गाँव के मुखिया कपुरसिंह की सलाह के अनुसार खिदराना नामक स्थान युद्ध के लिए पसन्द करना, माझा संमेलन

में युद्ध विरोधी पलड़ा भारी किंतु गुरु का अटल रहना, माई भागो के नेतृत्व में एक सेना तथा महानसिंह के नेतृत्व में एक सेना-दोनों सेना का खिदराना की ओर प्रस्थान, गुरु की सेना की जीत, महानसिंह की शहादत, गुरु द्वारा 'बेदाने' को फाड़ देना, माई भागो का घायल होने पर उपचार करना, गुरु की धर्म-प्रचार, के लिए मालवा-यात्रा, दमदमा साहिब में नौ महीने रहना, दल्ला के अहंकार को तोड़ना, दमदमा साहिब में आने पर पुत्र-हत्या से माताओं का दुःखी होकर गुरु को कोसना, गुरू का उत्तर- "इन पुत्रन के शीश पर वार दिए सुत चार, चार गए तो क्या हुआ जीवित चार हजार। गुरु का मनीसिंह आदि ग्रंथ का संपादन करवाना, इस ग्रन्थ में पाँच गुरुओं की रचना के अलावा कबीर, रविदास, फरीद, पिता तेगबहादुर की रचनाओं को सम्मिलित करना, गोविन्दसिंह द्वारा अपनी एक भी रचना नहीं रखना, ग्रन्थ की समाप्ति पर कलमों तथा बची-खुची स्याही को 'लिखनसर' तालाब में विसर्जित करना, दमदमा साहिब में खालसा पंथ में एक लाख से अधिक लोगों का दीक्षित होना, औरंगजेब का 'जफरनामा' पढ़कर मर्माहत होना, दुःख और पश्चाताप भरा पत्र लेकर दयासिंह और धरमसिंह के साथ निकल पड़ना, गुरु की चिन्ता, दक्कन जाने का निर्णय करना, भक्तों द्वारा रोकने की कोशिश किन्तु गुरु का अपने निर्णय में अटल रहना, गुरु का धरमसिंह, परमसिंह, मनीसिंह, दानसिंह, रामसिंह, गुरुबख्श करार के साथ निकलकर दादू की समाधि 'दादूवाड़ा' पहुँचना, गुरु द्वारा समाधि को नमन करना, इस बात से शिष्यों में तर्क-वितर्क-चलना, गुरु से एक सौ पच्चीस रूपए का जुर्माना लेना, इस रकम से तम्बू खरीदना, गुरु द्वारा भविष्यवाणी करना कि 'अब यह पंथ जब तक सृष्टि रहेगी तब तक रहेगा', रास्ते में दयासिंह, धरमसिंह का मिलना, औरंगजेब की मृत्यु के कारण उसके पुत्रों में सत्ता-संघर्ष चलना, गुरु द्वारा मुअज्ज़म को सहायता करना, मुअज्ज़म का बहादुरशाह नाम धारण करके शाहंशाहे हिन्द के रूप में गद्दीनसीन होना, मुअज्ज़म द्वारा गुरु को दक्कन की ओर जाने का प्रस्ताव किन्तु गुरु द्वारा इसे अस्वीकृत कर देना, माधोदास वैरागी का गुरु का मुरीद हो जाना, गुरु का नादोड़ में बसना, वजीर खां द्वारा भेजे हुए दो खूंखार पठानों का मौका मिलते ही गुरु के कलेजे पर छूरा भोंकना, दोनों का गुरु की गुरु तलवार से मौत होना, कौल नामक अंग्रेज द्वारा गुरु की शल्य चिकित्सा करना, शक्तिशाली धनुष को तानकर तीर चढ़ाते समय गुरु के घाव का खुल जाना, गुरु द्वारा गुरु समाप्ति की घोषणा करना 41 वर्ष 10 महीने की आयु में 7 अक्तूबर 1708 को गुरु की इह लीला समाप्त आदि-आदि।[122]

जहाँ तक 'गोबिन्दगाथा' की भाषा का प्रश्न है यहाँ भी मिश्रजी के पूर्ववर्ती उपन्यासों की तरह विभिन्न भाषाओं के शब्द मिलते हैं, तथापि बहुलता संस्कृत शब्दों की मिलती है। उपन्यास में प्रयुक्त संस्कृत शब्दों में से कुछेक के उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है- श्रद्धा-नत, रिक्त-हस्त, अभिषिक्त, कच्छप, द्वयर्थक रूप, देह-यष्टि, नक्षत्र-खचित गगन, आर्ष-वाक्य, अपदस्थ, वाग्मिता, लिप्यांतर, सिरस्त्राण, श्मश्रुयुक्त आनन, श्रृंगाल, शाखामृग आदि-आदि।[123] 'गोबिन्द गाथा' सिक्खों के दसवें गुरु गोविन्दसिंह पर आधारित ऐतिहासिक उपन्यास है फलतः उसमें पंजाबी के शब्दों का मिलना स्वाभाविक कहा जाएगा। ऐसे शब्दों में हम लंगर-पंगत, परवचन, अरदास, कीरत, पंच पियारे, बाटा, पंच मुक्ते, वाहि गुरु जी का खालसा, वाहि गुरु जी की फतह, बोले सो निहाल, सत् श्री अकाल, परसथान, परगति, पसचात, सरधा, गुरुमता, परसतुत, जेवा, परतीकातमक आदि शब्दों की गणना कर सकते हैं।[124] 'का के लागूं पांव' की तरह यहाँ भी अरबी-फारसी के शब्द धड़ल्ले के साथ आए हैं। उदाहरण स्वरूप कुछ शब्दों का उल्लेख नीचे किया जा रहा है-नब्ज़, बा-इज्ज़त, शुक्रगुजार, नजरअंदाज, खुराफात, मनहूस, बे-अकल, नजाकत, बर्खास्तगी, तख्ते-ताऊस, अब्बाजान, अदीब, तजुर्बेकार, तकाजा, आगाह, तबाह, फरार, मक्कार।[125]

भाषा की सम्पन्नता में विशेषण वृद्धि करते हैं। उपयुक्त विशेषणों का प्रयोग काव्य-भाषा को ही समृद्ध नहीं करता गद्य को भी समृद्ध करता है। मिश्रजी के उपन्यासों में भी कई अच्छे विशेषणों का प्रयोग मिलता है। बल्कि कुछ विशेषण तो विशेषण विपर्यय अलंकार की सीमा को भी स्पर्श करते हैं। ऐसे कुछेक विशेषणों को यहां प्रस्तुत किया जा रहा है - सूची-भेद्य अंधकार, अकल्पित आत्मविश्वास, अगाध दायित्व बोध, अंधकारयुक्त अंतर, मंद्र मेघ गर्जन, पशस्त ललाट, ओज्ञ भरी आम की फांको-सी लम्बी आँखे, सदा सलिला-स्वर्णिम सतलज, स्वर्णिम सिरस्त्राण, क्वांरे अरमान, धवल, निरभ्र आकाश, खुदाई शख्सियतें, इल्हामी ताकत, इंसानी मुहब्बत, खुदाई मुहब्बत, आकाशचारी चाँद, नापाक कोशिश, रंगा स्यार, मनमाना खिलवाड़।[126] विशेषणों की भाँति काव्य-गुण सम्पन्न रूपकों का प्रयोग भी लेखक ने किया है। यथा भाग्यकाश, गोबिन्द रूपी सूर्य, काल-जिह्वा, जीवन रूपी रथ चक्र,तर्क-जाल, स्नेह-सलिल, अंधकार की चादर, चिंता रूपी अग्नि, सपनों के बीज, संकट के घनघोर काले मेघ, महत्वाकांक्षा की आग, आशीर्वाद की धार, राजनीति की बारहखड़ी, अब्बाजान की बरगदी छाया, प्रश्न की वजनदार चट्टान आदि-आदि।[127]

प्रस्तुत उपन्यास में अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों की भाँति कहावतों का समीचीन प्रयोग किया है। यथा-साँप भी मरे और लाठी भी नहीं टूटे, बिल्ली के भाग्य से छींका

टूटता है, डूबते जलयान से सबसे पहले चूहे भागते है, अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता, सिर मुड़ाते ओले पड़ना, बावन तोले पाव रत्ती, खेत खाए गधा, मार खाए जुलहा, सर्प एक बिल छोड़कर जाएगा दूसरे में बस जाएगा, दीप से ही दीप जलता है, साँप से अधिक सपोले अधिक खतरनाक होते हैं, जान है तो जहान है आदि-आदि।[128]

कहावतों की तरह मुहावरों का भरपूर प्रयोग मिश्रजी के उपन्यासों में मिलता है। प्रस्तुत उपन्यास में भी गालिबन 375 जितने मुहावरें हमने निकाले हैं जिनमें से कुछेक का उल्लेख हम यहाँ कर रहे हैं- कानों में उंगलियाँ डालना, कान देना, पानी की तरह बहाना, मिट्टी पलीद करना, मन के पुए पकाना, कान काटना, रोब गालिब करना, तलवे चाटना, पका आम बन जाना, चार चांद लगना, गाजर मूली की तरह काट देना, पांव के नीचे से धरती खिसक जाना, लाल-पीला होना, पालतू बिल्ली बनाना, इंन्द्रियों का कर्णवत हो जाना, मुँह तोड़ उत्तर देना, अन्न के लाले पड़ना, कमजोर नस पर उंगली रखना, आँखों की किरकिरी होना, सिर कलम कर देना, बगले झांकना, घास न डालना आदि-आदि।[129]

डॉ. भगवतीशरण मिश्र की जो प्रकृति और प्रवृति है उसके हिसाब से उनके लेखन में सूक्तियों का न होना आश्चर्य की बात ही कहा जाएगा। अस्तु, यहाँ भी ढेर सारी सूक्तियाँ हमें मिलती हैं जिनमें से कुछेक का उल्लेख यहाँ कर रहे है - (01) अवसर की तलाश में रहनेवालों के पास वह आता ही रहता है। (02) प्रेम अधिकार का अधिकारी कब से हो गया? वह तो त्याग का पर्याय है। वह स्वार्थ के वशीभूत कब से होने लगा, वह तो निस्वार्थता का प्रतीक है। वह देना जानता है, लैना उसने कब सीखा? (03) जो एक बार दगा कर सकता है वह दूसरी बार भी कर सकता है, इसमें कोई संदेह नहीं। (04) कर्म के बिना धर्म असहाय है। अकाल पुरुष भी आलसी और अशक्त की कुछ सहायता नहीं कर सकता। (05) शत्रु और सांप पर रहम नहीं की जाती, न उन्हें मात्र छेड़कर छोड़ दिया जाता है। उनके सिर को पूरी तरह कुचल नहीं दो तो वक्त आते ही पलटकर डंसने में इन्हें समय नहीं लगता। (06) जिस जीवन में सपने नहीं हों और उनको साकार करने का प्रयास और संघर्ष; वह जीवन भी कोई जीवन है क्या? (07) शत्रुओं और वेश्याओं के सामने खाई शपथ का कोई अर्थ नहीं होता।[130]

अतः कहा जा सकता है कि प्रस्तुत उपन्यास भी भाषागत संपन्नता की दृष्टि से काफी समृद्ध है।

शान्तिदूत (६१)

स्वाधीनता की पचासवीं जयन्ती पर प्रकाशित 'शान्तिदूत' डॉ. भगवतीशरण मिश्र का एक जीवनीपरक ऐतिहासिक उपन्यास है। इस उपन्यास में विश्व प्रसिद्ध महात्मा गांधीजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का सही स्वरूप में आकलन किया गया है। इस औपन्यासिक कृति द्वारा मिश्रजी ने बापू की सर्वथा प्रामाणिक जीवनी को यथार्थतः ढंग से उकेरने का सराहनीय प्रयास किया है। ऐतिहासिक उपन्यास के सन्दर्भ में मिश्रजी ने भूमिका में लिखा है- ''इतिहास में तिथियों के सिवा सब कुछ मिथ्या होता है और ऐतिहासिक उपन्यास में तिथियों के अलावा सब कुछ सत्य होता है। इस औपन्यासिक कृति में इस कथन को झुठलाने का मैंने सक्षम प्रयास किया है। यहां घटनाएँ भी सत्य हैं और तिथियाँ भी। मैं यहाँ अपने पाठकों को आश्वस्त करना चाहूंगा कि गांधी के सदृश विश्वस्तरीय व्यक्तित्व को लेकर रचित इस उपन्यास में मैंने किसी काल्पनिक घटना अथवा चरित्र का समावेश करना अपराध माना है। प्रस्तुतीकरण की शैली ही औपन्यासिक है, शेष सब कुछ वही है जो गांधी के व्यक्तित्व अथवा कृतित्व में उपलब्ध है।[131]

उपन्यास का शीर्षक भी बड़ा सटीक, सार्थक एवं उपयुक्त है। महात्मा गांधी भारत की आत्मा थे। वे वास्तव में भारत राष्ट्रपिता अर्थात् बापू के नाम से पुकारे जाते हैं। भारत ने उनके परिश्रम तथा सत्य और अहिंसा नामक दो शस्त्रों से एक अव्वल नम्बर की सत्ता को झुकाकर अपनी खोई हुई स्वतंत्रता को प्राप्त किया। मिश्रजी ने इस उपन्यास में उनके विषय में लिखा है- ''उनकी महानता आरोपित नहीं अपितु अर्जित थी। अतुलनीय श्रम, साधना, त्याग और तपोबल से प्राप्त।''[132]

प्रस्तुत उपन्यास 56 परिच्छेदों में विभक्त किया गया है। अन्तिम परिच्छेद 'हे राम!' में देश विभाजन के दुष्परिणामों तथा नाथूराम गोडसे द्वारा गांधीजी की हत्या आदि घटनाओं को समेकित किया गया है। उपन्यास के दूसरे फ्लैप पर प्रकाशक द्वारा शब्दांकित किया गया है कि ''महात्मा गांधी के बहुआयामी व्यक्तित्व पर आधारित यह उपन्यास आरम्भ से अन्त तक उनके जीवन की सभी घटनाओं पर रोचक प्रकाश डालता है।''[133] इन घटनाओं में स्वाधीनता संग्राम से सम्बन्धित अनेक पात्र तथा अन्य पात्र भी इस उपन्यास में आए हैं। किन्तु लेखक ने उपन्यास की भूमिका में ही स्पष्ट कर दिया है कि यह कृति चूंकि महात्मा गांधी को ही केन्द्र- बिन्दु में रखकर सृजित हुई है, अतः उनके चरित्र के विभिन्न आयामों पर ही अधिक प्रकाश डाला गया है। कथा क्रम में कुछ अन्य चरित्र भी अवश्य सामने आए हैं किन्तु यह अपेक्षा करना कि इसमें भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम से संबंधित सभी व्यक्ति आ जाएँगे, उचित नहीं

होगा।[134]

उपन्यास का प्रारम्भ ही अफ्रीका के नेताल प्रदेश की राजधानी मेरित्सबर्ग के स्टेशन पर गांधीजी का गोरे अंग्रेज द्वारा अपमान की प्रसिद्ध घटना से होता है। गांधीजी की अहिंसा और सत्याग्रह के प्रथम सफल प्रयोग की शुरुआत वास्तव में यहीं से हुई थी। परिच्छेद दो से लेकर बारह परिच्छेदों में गांधीजी के बचपन, संस्कार सिंचन, विलायत में पढ़ाई के लिए जाना तथा दक्षिण अफ्रीका के लिए जहाज से यात्रा आदि प्रसंगों को निम्नांकित रुप से आलेखित किया गया है। माता-पिता एवं पितामह के संस्कारों का सिंचन, 'सत्य हरिशचन्द्र' नाटक से प्रभावित होना, तेरह साल में कस्तूरबा से विवाह, किशोरावस्था में डरपोक एवं कामासक्त, मांसाहार के प्रयत्न, चोरी और पश्चाताप, मावजी दवे द्वारा गांधी को विलायत भेजने का प्रस्ताव, उसके लिए आर्थिक प्रबन्ध, पुतलीबाई के समक्ष तीन प्रतिज्ञा-मांसाहार और मदिरा-पान नहीं करना तथा पर स्त्री से दूर रहना - 4 सितम्बर 1888 को विलायत के लिए रवाना, डॉ. महेता के घर में पेइंग गेस्ट के रूप में रहना, निरामिष होटल में भरपेट भोजन लेना, लंदन में कानून की पढ़ाई हेतु 'इनर टेम्पल' संस्था में नामांकन, प्रो-लेली से वास्ता पड़ने पर अपनी कच्ची अंग्रेजी पर लज्जित होना, लन्दन से 'मेट्रिकुलेशन' में प्रथम प्रयास में असफल दूसरे प्रयास में सफलता, अन्नाहार पर कई प्रयोग करना, अन्नाहार मण्डल के सदस्य, एडविन अर्नाल्ड का गीता पर अंग्रेजी अनुवाद तथा बुद्ध पर लिखी 'लाइट ऑफ एशिया' ग्रन्थों को पढ़ने से अहिंसा सम्बन्धी अवधारणा मजबूत होना, अपनी आवश्यकताएँ सीमित करके जीवन में सादगी लाने का प्रयास करना, मैडम ब्लेवस्की की पुस्तक 'की टू थियोसोफी' पढ़ना; बुद्ध, ग़ीता, बाइबल से व्यापक दृष्टि का विकास होना, कार्लाइल की पुस्तक 'हीरो एंड हीरो वर्शिप' पढ़ने से हजरत मुहम्मद साहब की महानता से परिचित होना, पेरिस महाप्रदर्शनी को देखना, बैरिस्टरी में रोमन लॉ और कामन लॉ पढ़ने के कारण उनका आशंकित होना कि हिन्दू लॉ और मुस्लीम लॉ नहीं पढ़ने से हिन्दुस्तानी अदालतों में वे कैसे लड़ पाएँगे? 10 जून बैरिस्टरी परीक्षा उत्तीर्ण, 11 जून हाईकोर्ट में रजिस्ट्रेशन, 12 जून को हिन्दुस्तान रवाना, उनके तीन मार्गदर्शक टोल्सटोय, रस्किन, रायचंद-बम्बई हाइकोर्ट में से कुछ दिनों बाद लौटकर राजकोट के छोटे कोर्ट में अपनी किस्मत आजमाना, बम्बई में ममीबाई के केस में असफल होना, शिक्षक के साक्षात्कार में प्रिंसिपल से वाद-विवाद, राजकोट में कुछ केस मिलना, लन्दन के मित्र अंग्रेज ऑफिसर की उपेक्षा, पोरबंदर के मेमन फर्म के एक अदालती विवाद में वकीलों, सोलिसिटरों को केस समझाने के लिए एक विश्वासी व्यक्ति के रूप में दक्षिण

अफ्रीका के प्रस्थान के लिए जहाज के केबिन में कप्तान के साथ यात्रा आदि-आदि।[135]

उपन्यास का आरम्भ जिस प्रसंग से हुआ था उसकी अगली कड़ी का समायोजन तेरहवें परिच्छेद से किया गया है। नेटाल पहुँचने के बाद प्रारंभिक दौर में गांधी को हुए कटु अनुभवों का विवरण, गांधी द्वारा प्रिटोरिया में दस्तावेज पढ़कर टिप्पणियाँ तैयार करने का काम करना, पग-पग पर अपमानित गांधी की अफ्रीका में भारतीयों पर हो रहे अत्याचार और अनाचार विरुद्ध एक अहिंसक युद्ध छेड़ने की मन ही मन प्रतिज्ञा लेना, भारतीयों की समस्या के लिए समिति गठन करना, अच्छे कपड़ो में रहनेवाले हिन्दुस्तानियों को रेलवे द्वारा प्रथम श्रेणी की यात्रा की मंजूरी देना, ओरेंज फ्री स्टेट, और ट्रांसवाल में भारतीयों के साथ बदतर व्यवहार, नेटाल के हिन्दुस्तानियों को कौंसिल के मताधिकार से वंचित करना, नेटाल में गिरमिटियों की समस्या का आकलन, तमिल निवासी बालासुन्दरम् नामक एक गिरमिटिए का प्रसंग, इंडियन कांग्रेस की स्थापना, 27 वर्ष की उम्र में गाँधी का अपने परिवार को लेने भारत आने पर भारतीय नेताओं तथा सामान्य जन से सम्पर्क करना और साक्षात्कार छपवाना, उनके लिए फिरोजशाह द्वारा सार्वजनिक भाषण का आयोजन, गांधी द्वारा एक महीने के कड़े परिश्रम बाद 'ग्रीन बुक' पुस्तक में नेटाल ट्रांसवाल, फ्री ओरेंज स्टेट में प्रवासी भारतीयों के विरुद्ध हो रहे अत्याचार और अनाचार का विवरण, राजकोट और मद्रास में गांधी का खूब प्रचार तथा 'बंगवासी' और 'अमृत बाजार' पत्रिकाओं के बंगाली सम्पादको के कटु अनुभव, गांधीजी का परिवार के साथ डरबन की ओर प्रस्थान, विभिन्न धर्मग्रंथो में प्रतिपादित अहिंसा के महत्व से गांधीजी का प्रभावित होना, मि.इस्कंब का गांधी के प्रताड़कों के विरुद्ध मुकद्मा चलाने की बात कहने पर 'हिंसा को हिंसा से नहीं प्रेम से जीतने की बात गांधी द्वारा कहना,देश-विदेश के अखबारों में गांधी पर हुए हमले और उनके क्षमा-दान की चर्चा, गांधीजी के विचारों में परिवर्तन, अपने काम स्वयं करना, मूत्र-पात्र ले जाते समय कस्तूरबा की आँखों में पानी आने पर गाधी का क्रोधित होना, बाद में पत्नी की माफी मांगना, गांधीजी की दक्षिण यात्रा के कारण ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा एक प्रस्ताव पारित करना, इसमें प्रवासी भारतीयों की दुःस्थिति के प्रति चिन्ता व्यक्त करना, 1899 अक्तूबर के बोअर युद्ध में गांधीजी का अपनी टुकड़ी 'इन्डियन एम्बुलेंस कोर्प्स' के साथ अंग्रेज सरकार को सहायता प्रदान करना, 1902 में बोअर युद्ध समाप्त, गांधीजी का प्लेग की आशंका से घर-घर जाकर सफाई के महत्व को समझाकर हाथ बँटाना, 1897 और 1899 भारत में अकाल के समय नेटालवासियों की सहायता,

गाँधीजी को विदाई समारोह में अनेक मानपत्र और कीमती वस्तुएँ मिलना, उन उपहारों को वापस कर एक ट्रस्ट बनाकर बेंक में रखना, आवश्यकतानुसार आपत्तिकाल में ट्रस्टियों और गांधीजी की इच्छानुसार उपयोग आदि।[136]

परिच्छेद इक्कीस से लेकर तीस परिच्छेद तक निम्नलिखित घटनाओं का ब्यौरा दिया गया है। 23 दिसम्बर कलकत्ते के अधिवेशन में प्रायः एक लाख अफ्रीकावासी भारतीयों की दुर्दशा का रेखांकन विषयक प्रस्ताव पारित हो जाना, गाँधीजी का अधिवेशन में कांग्रेस के महत्वपूर्ण नेताओं से संपर्क, कलकत्ता के प्रसिद्ध काली मन्दिर में बकरे-बकरियों की बलि के कारण गांधीजी का मन आहत, अंग्रेजों के साथ भारतवासियों द्वारा बर्मावासियों के शोषण प्रताड़न से गांधीजी के मन में आंतरिक पीड़ा, जयनगर मुकद्मे में विजय के पश्चात् गांधीजी के मनोबल का बढ़ना, 1902 में नेटाल प्रस्थान, बोअर युद्ध के पश्चात् भारतीयों को ट्रांसवाल जाने का परवाना लेना जरुरी एवं अनेक छोटी-बड़ी समस्याओं को सुलझाने के लिए गांधीजी के प्रयत्न, गांधीजी का ट्रांसवाल के जोहान्सबर्ग में साधारण-सा कमरा लेकर अपना कार्यलिय खोलकर वकालात करना, बाह्य दिखावे और रहन-सहन के ढंग को तिलांजलि देना, पेशे और राजनीति की ओर समान रूप से ध्यान देना, जोहान्सबर्ग में सत्रह दिनों लगातार मेघों के प्रलय-नर्तन के कारण भारतीयों का प्लेग की महामारी की चपेट में आ जाना, गांधीजी का ईश्वर के प्रति दृढ विश्वास, गीता-कर्म-चर्चा, गीता की उक्तियों को जीवन में उतारने का व्रत, गाँधीजी का सदा संघर्षरत-कर्मरत रहना, बाईबल में भी कर्म की महत्ता के प्रतिपादन की बात, अफ्रीका के अनुभवों से गाँधीजी को स्पष्टतः चार प्रमुख अवधारणाएँ मिलना - सत्याग्रह, फलचिन्तारहित सतत कर्मण्यता, निर्भय और प्राकृतिक चिकित्सा में अमिट विश्वास- कस्तूरबा के योगदान से 1906 में ब्रह्मचर्य व्रत,गांधीजी कलम की ताकत से भिज्ञ; भारतीयों को अपने अधिकारों के प्रति जागृत करने, स्वच्छता की भावना भरने, जीवन में सत्य, अहिंसा का महत्व समझाने, उनकी समस्याओं का विश्लेषण करने एवं समाधान ढूंढने के लिए 'इंडियन ओपिनियन' नामक अखबार को माध्यम के रूप में चुनना; रस्किन की 'अन टु दी लास्ट' पुस्तक से काफी हद तक प्रभावित, फिनिक्स आश्रम की स्थापना, गाँधीजी के मन में जाति-गत, धर्म-गत, रंग-गत,भेद के लिए कोई स्थान न होना, गाँधीजी की भौतिक वस्तुओं के प्रति अरुचि एवं पैतृक संपत्ति में अपना कोई हिस्सा न होने की बात पत्र द्वारा अपने भाई लक्ष्मीचंद को लिखना, गाँधीजी का परिवार को आश्रम में छोड़ जोहान्सबर्ग के लिए प्रस्थान, ट्रांसवाल में भारतीयों को तंग करने और उनके प्रवेश को रोकने के लिए नया कानून, गांधीजी के नेतृत्व में

काले कानून का अहिंसक रूप से विरोध, आंदोलन का नाम 'पैसिव रेसिस्टेन्स' से बदलकर 'सत्याग्रह' रखना, अल्बर्ट कार्टराइट गाँधी समझौता, निबंधन कार्यालय के पास मीर और उसके साथियों का गांधी पर हमला, स्मट्स द्वारा वचनभंग, कानून को और धारदार बनाना, 23 जुलाई 1908 को गाँधी के एलान पर दुकानदारों और व्यापारियों द्वारा प्रतिष्ठान बंद रखना, कस्तूरबा को भयानक रक्तस्त्राव की वजह से डरबन अस्पताल में ओपरेशन, गाँधीजी की लंदन में भारतीय स्वतंत्रता के हिंसक विरोधियों से मुलाकात, सर कर्जन बिली की हत्या में मदनलाल ढींगरा को मौत की सजा, पुलिस कोर्ट में उनका वक्तव्य, गृहविहीन लोग और जेल में जानेवाले सत्याग्रहियों के लिए व्यापारी रतनशी जमशेदजी टाटा द्वारा पचीस हजार रूपए तथा भारत से अनेक लोगों एवं राजे रजवाड़े द्वारा लाखों रूपयों का दान, गांधीजी के एक जर्मन मित्र हरमन केलनलाख द्वारा दिए हुए ग्यारह हजार एकड़ के बड़े से फार्म पर विस्थापित भारतीयों के लिए छोटे-छोटे मकान बनवाकर टॉल्सटोय आश्रम नाम देना, 4 जून से भारत के अनेक प्रदेशों एवं विभिन्न, धर्मों के सत्याग्रहियों का यहाँ बसना और काम में हाथ बंटाना, टोल्सटोय आश्रम को स्वावलम्बी बनाने की लिए छोटे-छोटे गृह-उद्योग एवं शिक्षण की व्यवस्था विंस्टन चर्चिल की घोषणा अनुसार जुलाई 1910 में सत्याग्रहियों को मुक्त करना, गाँधीजी का पाँच-छ हजार पौंड की वार्षिक आय की वकालात को छोड़कर लोगों की सेवा में निमग्न, त्यागमय, पूरी तरह सत्याग्रही और सादा जीवन अपनाना; काले कानून के विरुद्ध में सत्याग्रह का चलते रहना, ट्रांसवाल के सर्वोच्च अदालत के एक मुकद्में के सिलसिले में निर्णय देना कि ईसाइयों की पद्धति से विधिवत् निबंधन नहीं हुआ हो और दम्पति ने हस्ताक्षर न किए हो ऐसे एशिया मूल के लोगों का विवाह मान्य नहीं, स्त्री-पुरुष और मजदूर भी सत्याग्रह में शामिल, रेलवे के सभी युरोपियन कर्मचारियों की हड़ताल के कारण राज्य में मार्शल ला लागू, गांधी द्वारा अंग्रेजों के प्रति सहानुभूति दिखाने के लिए अपने जुलूस को आगे बढ़ने से रोकना, 1914 में स्मट्स-गांधी समझौता, लन्दन से साइमन कमीशन की नियुक्ति में भारतीयों की हर मांग को मानना तथा केन्द्र सरकार की मुहर और इंडिया रिलीफ विधेयक 1914पारित कर अनुशंसाओं को कानूनी रुप देना, 45 वर्ष की उम्र में 20 वर्ष बाद 18 जुलाई 1914 को गाँधीजी का भारत सीधे न जाकर 16 अगस्त को लन्दन पहुँचना, गाँधीजी के स्वागत में लन्दन के कई समारोहों में हिन्दुस्तानियों के अलावा अंग्रेज प्रशंसक भी शामिल, 'वेस्ट मिनिस्टर पैलेस होटल' के विदाई समारोह के आयोजन में अपने भाषण में भारतीयों को युद्ध में भाग लेना उचित बताना, 7 फरवरी 1915 को बम्बई बन्दरगाह पर गाँधीजी-कस्तूरबा के

स्वागत के लिए नरोत्तम मोरारजी आदि नेताओं के अलावा सैकड़ों लोग उपस्थित, बढ़वाड़ स्टेशन पर मोतीलाल नामक एक दर्जी द्वारा वीरमगांव के चुंगी कार्यालय में होनेवाली कठिनाइयों और भ्रष्ट कर्मचारियों की मनमानी के सम्बन्ध में जानना, गाँधी द्वारा चुंगी कार्यालय से आम जनता की कठिनाइयों का पता लगाकर बम्बई के गवर्नर लोर्ड विलिंगड़न से मिलना, वायसरोय के साथ पत्राचार, दो वर्ष पश्चात् वायसरोय से मिलना, वीरमगाँव की चौकी उठ जाना। भारत में गाँधीजी की यह प्रथम विजय थी।[137]

तत्पश्चात् गाँधीजी का शांति-निकेतन प्रस्थान, गोखले की उत्तरक्रिया से निवृत्त देशभ्रमण का निर्णय, भूपेन्द्र बसु के यहाँ जाना, रंगून यात्रा के दौरान जहाज के डेक पर चारों ओर गंदगी की शिकायत पत्र द्वारा जहाज कम्पनी के मालिक को करना, हरिद्वार में अस्थायी पाखानों की सफाई करना, गोंडल के राजा की ओर से संस्कृत और गुजराती में पीले वस्त्र-खण्डों पर लिखा मानपत्र भेंट करना, और मंच से 'महात्मा गाँधी' सम्बोधन का प्रयोग करना, हरिद्वार कुंभ में सत्रह लाख लोगों में बहुत से पांखडियों और नकली साधुओं को देखना, गंगा-किनारे लोगों द्वारा गंदगी और सामान चोरी होने से गाँधीजी का मन क्षोभित, लक्ष्मण-झूला देखकर मोह भंग, मुंशीराम के दर्शन करना तथा उनसे और शिक्षकों से कुटीर उद्योगों की शिक्षा देने की चर्चा करना, संन्यासी के जीवन में व्रतों का महत्व रहना और आजीवन पालन करना सत्य,अहिंसा, पश्चिमी मिलों के बुने कपड़ो का बहिष्कार आदि - हरिद्वार में प्रायश्चित के रूप में दो व्रत लेना: (01) चौबीस घण्टों में पाँच से अधिक वस्तुए नहीं खाना, (02) सूर्यास्त के पश्चात् नहीं खाना, गाँधीजी का गिरमिटिया समस्या के समाधान के लिए तथा लोगों में जागृति पैदा करने के लिए देश भ्रमण, 31 जुलाई से पहले गिरमिट प्रथा की समाप्ति की घोषणा, तीसरे दर्जे की यात्रा के दौरान दो मनोरंजक अनुभवों का वर्णन, चम्पारण जिले में किसानों पर नीलहे अंग्रेजों के अत्याचार, गांधीजी का चम्पारण की समस्या अपने हाथ में लेकर इस सम्बन्ध में माहिती एकत्रित करना, गाँव में अनेक रचनात्मक कार्य करना, अन्त में जांच समिति अनुसार किसानों से जबर्दस्ती वसूल किए गए रूपए के कुछ प्रतिशत नीलहों द्वारा लौटाने की बात एवं तीन कठिया प्रथा समाप्त करने की अनुशंसा का गवर्नर द्वारा स्वीकार करना, मजदूर संघ की मांगों को मिल-मालिकों से मनवाने के लिए गाँधीजी के परामर्श पर मजदूरों द्वारा हड़ताल करना, मजदूरों के मनोबल को टूटता देखकर गांधीजी के उपवास, मिल मालिकों द्वारा पंच की व्यवस्था मान लेना, दोनों के मध्य समझौता, खेड़ा जिले में फसल मारी जाने पर भी सरकार मालगुजारी वसूल करने पर

आमादा इसलिए किसानों का आंदोलन, इस सत्याग्रह में गाँधीजी के अलावा वल्लभ भाई पटेल, श्री महादेव देसाई, अनसूया बहन, मोहनलाल का भी शामिल होना, सत्याग्रहियों के मनोबल को टूटता देखकर गांधीजी द्वारा सविनय अवज्ञा के शस्त्र का प्रयोग, जिलाधिकारी का विवश होकर प्रस्ताव कि जो किसान खुशहाल है वे लगान भर दे और शेष लोगों की लगान माफ (इस सन्दर्भ में शंकरलाल पारेख की पुस्तक 'खेड़ा की लड़ाई का प्रामाणिक इतिहास' और चम्पारण के सत्याग्रह को लेकर राजेन्द्रप्रसाद की पुस्तक 'चम्पारण में गाँधी') दिल्ली में प्रसिद्ध नेताओं की बैठक में वायसरोय के रंगरूटों की भर्ती के प्रस्ताव का गांधीजी द्वारा समर्थन, जर्मनी की हार के कारण रंगरूटों की भर्ती बंध रहना, सर रोलट के नेतृत्व में दो कानून - दूसरा देशवासियों के लिए खतरनाक इसके अनुसार ब्रिटिश राज्य से भारत को मुक्त कराने से सम्बन्धित कोई भी कागजात को प्रकाशित या वितरित करना कानूनन अपराध और उसके लिए जेल की सजा - नेताओं से सलाह-विमर्श कर 30 मार्च को पूरे देश में हड़ताल करने की बात किन्तु बाद में तारीख बदलकर छः अप्रैल करना, दिल्ली में 30 मार्च को हड़ताल, दिल्ली और पंजाब में हड़ताल का हिंसक रूप धारण करना, गांधीजी की गिरफ्तारी की खबर फैलने से दिल्ली, अमृतसर, कलकत्ता, अहमदाबाद, लाहौर तथा देहातों तक के लोगों का हिंसक रूप धारण करना, गांधीजी द्वारा मोटरगाड़ी में बैठकर नगर की हालात देखने जाना, वहाँ पुलिस और भीड़ दोनों का पागल होना, अहमदाबाद में अनसूया बहन की गिरफ्तारी की अफ्वाह सुनकर भीड़ द्वारा एक सरकारी सिपाही की हत्या करना, गांधी द्वारा अहमदाबाद में से मार्शल ला हटाने की मांग, भीड़ द्वारा रेल की पटरियों को उखाड़ना, वीरमगांव में एक सरकारी कर्मचारी की हत्या, गांधीजी द्वारा प्रायश्चित के रूप में तीन दिन के उपवास करना, लोगों को अपराध स्वीकार करने और एक दिन के उपवास की बात पर जोर देना, लोगों द्वारा भूल स्वीकारने पर क्षमा-दान देने का सरकार से अनुरोध किन्तु सरकार दृढ और जनता उत्तेजित, पंजाब में फौजी कानून लागू, दिखावे के लिए अदालत में नेतागण पर मुकद्मे चलाकर गवर्नर की इच्छा के मुताबिक फैसला, गाँधीजी को पंजाब जाने की अनुमति नहीं मिलना, गाँधीजी द्वारा 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' पत्रों के सम्पादन का दायित्व लेना, 13 अप्रैल 1919 जलियावालां बाग हत्याकांड, डायर के मन की कुत्सित भावनाओं का चित्रण, सरकार द्वारा हंटर-समिति की नियुक्ति, हंटर कमेटी का प्रतिवेदन अंग्रेजों के पक्ष में, कांग्रेस द्वारा इसका विरोध, गाँधीजी की अध्यक्षता में गैर सरकारी समिति का गठन, हंटर-गाँधी बातचीत, भारतवासियों के घाव पर मलहम लगाने के प्रयास के रूप में लोर्ड मोटेग्यू और लोर्ड

चेम्सफोर्ड के अन्तर्गत एक समिति का गठन करके ब्रिटिश शासन पद्धति में कल्याणकारी बनाने का सुझाव देना, गाँधी और कुछ नेताओं में विचार भेद, अमृतसर अधिवेशन में तीन प्रस्ताव पारित (01) कांग्रेस का एक उपयोगी एवं सर्वमान्य संविधान तैयार करना, (02) जलियावाला स्मारक फंड के लिए राशि एकत्रित करना (03) हाथ से कांते धागों के आधार पर हाथ से ही बुने कपड़ो को प्रमुखता देना - प्रस्तावों को क्रियान्वित करने का भार गाँधीजी पर, 1 अगस्त 1920 तिलक का अवसान, मुसलमानों का खिलाफत आंदोलन, 1920 के नागपुर अधिवेशन में स्वराज्य प्राप्ति के लिए अहिंसक अहसहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव पारित, हिन्दू-मुस्लीम एकता पर जोर, तिरंगा झंडा गांधीजी के आग्रह पर अधिवेशन द्वारा स्वीकृत, बंकिमचंद्र चटर्जी की चर्चित पुस्तक 'आनन्दमठ' में से राष्ट्रगीत रखना आदि स्वातंत्र्य-संग्राम के समय के इतिहास प्रसिद्ध आन्दोलन एवं घटनाओं का चित्रण इकतीस से चालीस परिच्छेद तक किया गया है।[138]

उसके बाद इकतालीसवें परिच्छेद से छप्पन परिच्छेद तक में निम्न प्रमुख प्रसंगो का ब्यौरा दिया गया है। अंग्रेजों द्वारा भारत पर राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने से पूर्व वस्त्र-उद्योग पर कुठाराघात करना, गाँधीजी द्वारा 'अखिल भारतीय चरखा संघ' की स्थापना, देश के एक छोर से दूसरे छोर तक चरखे चला कर खादी का उत्पादन, गाँधीजी का नागपुर अधिवेशन में अहिंसक आन्दोलन का व्रत; देश के एक छोर से दूसरे छोर तक के छात्रों, युवकों, वृद्धों, महिलाओं, शिक्षकों, वकीलों, सरकारी नौकरों, व्यावसायियों, व्यापारियों ने अपने काम धंधे छोड़ना तथा अनेको का अपनी सम्पत्ति देश को अर्पित करके इस आन्दोलन में भाग लेना, छात्रों की व्यवस्था के लिए अनेक विद्यापीठों की स्थापना, कई लोगों द्वारा पाठ्य एवं पठनीय सामग्री भेंट, गाँधीजी द्वारा अक्षरज्ञान के लिए पुस्तिका तैयार करना, देश-विदेश की कृतियों का रूपान्तर, दिसम्बर 1921 के अधिवेशन की समाप्ति पर असहयोग आन्दोलन जोरो पर, सरकार द्वारा बड़े-बड़े नेता गिरफ्तार, लगभग 30 हजार लोग जेल के सिकंजो में, 4 फरवरी 1922 की चौरी-चौरी की घटना, गाँधीजी द्वारा आन्दोलन को वापस लेने का निर्णय, 10 मार्च, 1922 को महात्मा गाँधी गिरफ्तार, अहमदाबाद में बापू विरुद्ध राजद्रोह का मुकद्मा, गाँधीजी द्वारा अपना अपराध स्वीकार कर आन्दोलन के पक्ष में अपना निर्भीक बयान, बूम फील्ड का अदालत की परम्परा विरुद्ध कुर्सी में खड़े होकर गांधीजी को छः साल की सजा देना, गाँधीजी के सन्दर्भ में उनकी उक्ति - "आज तक किसी भी अदालत में ऐसा अभियुक्त पेश नहीं हुआ होगा और न किसी अपराधी ने ऐसा निर्भीक बयान देकर न्यायकर्ता के मुँह को बन्द करने का सफल

प्रयास ही किया होगा।'' गाँधीजी द्वारा जेल-जीवन में महत्वपूर्ण ग्रन्थों का अध्ययन, 11 जनवरी 1924 को गाँधीजी को असह्य दर्द के कारण अस्पताल में भर्ती कर एपेंडिक्स को बाहर निकालना, 5 फरवरी बिना शर्त मुक्त, देश से अधिक विदेश के लोगों द्वारा महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन और उनकी सत्य, अहिंसा, त्यागभावना को अधिक महत्व देना, अमरिकन अखबार नेशन द्वारा गांधीजी की तारीफ, 7 जून 1922 अखिल भारतीय कांग्रेस समिति का लखनऊ में पं. मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में आयोजित अधिवेशन, दिसम्बर 1922 को चित्तरंजनदास की अध्यक्षता में आयोजित अधिवेशन, 1924 में गाँधीजी का जेल से बाहर आना, कांग्रेसियों के विभाजन को देखकर खिन्न और दोनों को एक करना, 1926 में दार्जिलिंग में देशबन्धु चित्तरंजन दास की मृत्यु, 1926 में चुनावी राजनीति में कांग्रेस भारी बहुमत से विजयी, अन्ततः आन्दोलन का स्थगित होना किन्तु प्रायः पचीस हजार स्वयंसेवकों की सेना तैयार, इंग्लैंड के सर्वोच्च कमांडर अधिकारी की पुत्री मेडलिन मीरा नाम धारण करके सेवाग्राम की सेवा में लग जाना, गाँधीजी के प्रवचनों में दैवी अनुग्रह,कर्मशीलता, प्रार्थना का महत्व, भेदभावरहित एकता की बातें, सभा में हिन्दी पढ़ने और खादी के उपयोग पर बल, 3 जुलाई को 'दक्षिण भारतीय खादी प्रदर्शनी', 'विज्ञान संस्थान' के परिभ्रमण समय गाँधी का कथन, गाँधीजी के अनुसार, चरखा राष्ट्रोत्थान का मूल तथा पश्चिम की वैज्ञानिक यांत्रिक उपलब्धियों के अन्धानुकरण से व्यथित, साइमन कमीशन का विरोध, सरकार द्वारा शान्त जुलूसों पर निष्ठुर प्रहार, हृदयरोग से ग्रसित पंजाब के वयोवृद्ध नेता लाला लाजपातराय की लाठियों के प्रहार से मौत; भगतसिंह, यतीन्द्रनाथ द्वारा केन्द्रीय विधान सभा में बम फेंकना, जेल की अमानुषिक यंत्रणा से यतीन्द्रनाथ की मृत्यु, भगतसिंह को फांसी की सजा 1928 में गुजरात में बारडोली तहसील के किसानों की लगान में 77 प्रतिशत वृद्धि, बारडोली सत्याग्रह बापू की उपस्थिति में समाप्त, आन्दोलन की सफल पूर्णाहुति का श्रेय पटेल को जाना, उनको 'सरदार' का बिरुद देना, 26 जनवरी 1930 की बसन्त पंचमी के दिन की सुबह दस बजे पूरे राष्ट्र प्रतिज्ञा, गाँधीजी द्वारा लाहौर अधिवेशन दौरान (31 दिसम्बर 1929) 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार' की उद्घोषणा स्वराज्य प्राप्ति के सभी सदस्यों का त्यागपत्र 20 जनवरी 1930 को पूर्ण स्वतंत्रता का प्रस्ताव पारित, 4 मार्च को पटेल की गिरफ्तारी, गांधी का सभी प्रदेशों से 78 सत्याग्रहियों के साथ दांडी की ओर प्रस्थान, 6 अप्रैल सुबह 8:30 बजे गाँधीजी द्वारा नमक-कानून भंग, नमक-कानून भंग 13 अप्रैल तक चलना, 14 अप्रैल नेहरू गिरफ्तार, गाँधीजी के गिरफ्तार होते ही पूरे देश में हड़ताल एवं बन्द का

आयोजन, मोतीलाल नेहरू की अस्वस्थता के कारण पुत्र जवाहर को जेल से मुक्ति, मोतीलाल की लखनऊ में मृत्यु, 4 मार्च 1931 गाँधी-इरविन समझौता पश्चात् भी अनेक सत्याग्रही जेल में, उत्तरप्रदेश में लगान वसूली के नाम पर लोगों पर जोर-जुल्म, पठानों पर अत्याचार, 1931 अगस्त गोलमेज परिषद विभिन्न प्रकार के प्रतिनिधियों की भिन्न-भिन्न मांगो के कारण निष्फल, फ्रांस के दर्शनिक रोमारोलां और इटली के तानाशाह मुसोलनी से मिलकर गाँधीजी 31 दिसम्बर को भारत रवाना, बम्बई में तीन लाख लोगों की महती सभा में उदासीन गाँधीजी का वक्तव्य, साम्प्रदायिक दंगों को शांत करने की चेष्टा में गणेश शंकर विद्यार्थी के समान युवा नेता की कुर्बानी; गाँधीजी द्वारा विलिंगडन से देश की स्थिति और सत्याग्रहियों के प्रति हो रहे अत्याचारों का उल्लेख करने पर गांधीजी, महादेवभाई देसाई, वल्लभभाई पटेल को जेल में बन्द करना; 4 जनवरी 1932 में कांग्रेस को गैर-कानूनी संस्था घोषित कर राष्ट्रीय संस्थानों के साथ उसकी भी जमीन-जायदाद, मकान, बैंक खाते जब्त करना, सम्मेलनों जुलूसों पर प्रतिबन्ध, अखबारों का निकलना बन्द, छापखाने जब्त, 15000 लोग जेल में बन्द, महिलाओं पर अत्याचार और उनका अपमान, राष्ट्रध्वज का अपमान, छोटी-छोटी गलतियों के लिए सत्याग्रहियों पर चाबुकों की वर्षा, 1932-33 में राजनीतिक कैदियों पर अभूतपूर्व अत्याचार, 17 अगस्त 1932 को ब्रिटेन के प्रधानमंत्री मेकडोनेल्ड के आदेश पर 'कम्यूनल आवार्ड', गाँधीजी का हरिजनों के सबन्ध में हिन्दू धर्म के अनुयायियों से अपनी मानसिकता बदलने का आग्रह, इसी समय गाँधीजी द्वारा 'हरिजन' शब्द का प्रचलन, अम्बेडकर के अनुसार हरिजनों के लिए कुछ चुनाव-क्षेत्र सुरक्षित रखने की व्यवस्था मानना, गाँधीजी के छः दिनों के उपवास के पश्चात् कम्यूनल आवर्ड रद करने की घोषणा, गाँधीजी की इस एकाकी लड़ाई के लिए रवीन्द्रनाथ की पंक्तियाँ, हरिजनोद्धार के लिए लोगों को प्रेरित करने के लिए गांधीजी के 21 दिन के उपवास, हरिजन संघ की स्थापना, साबरमती आश्रम को हरिजन आश्रम बनाना, 1934 जनवरी में बिहार के भीषण भूकम्प में 20 हजार भोग काल-कवलित किन्तु लोगों को राहत देने का अंग्रेज सरकार द्वारा कोई प्रयास नहीं करना, गाँधीजी का रविशंकर महाराज और स्वामी आनन्द के साथ बिहार जाना, बापू की प्रेरणा से गुजरात, बम्बई से भूकम्प पीड़ितों के लिए सहायता, बापू की मोटर पर कुछ लोगों द्वारा बम फेंकना, जिससे बापू का बाल-बाल बच जाना, बापू का सक्रिय राजनीति से संन्यास लेना, जवाहरलाल नेहरू के सदृश युवा-पीढ़ी के हाथ में कांग्रेस को छोड़ना, खादी-विकास एवं प्रचार, हरिजन फंड, अछूतोद्धार, कुटीर उद्योगों का विकास, ग्राम उद्योगो का विकास आदि में गाँधीजी

पूरी तरह संक्रिय, गाँधीजी के स्वप्नों का भारत गाँवों का देश होना, गाँधीजी अन्धाधुन्ध औद्योगीकरण के विरोधी, नेहरू औद्योगीकरण एवं वैज्ञानिक विकास के तरफदार, फिर भी दोनों में प्रेम होना, मीरा द्वारा ढूंढे हुए सेगांव में कस्तूरबा और मीरा के साथ गाँधीजी का रहना, धीरे-धीरे सेगांव का कायाकल्प, उसका नाम बदलकर सेवाग्राम रखना, जापानी सन्त फीजी गुरु का आना, सेवाग्राम भीरतीय राजनीति का केन्द्र, प्रसिद्ध शिक्षाविद् डा॰ जाकिर हुसैन के योगदान से बुनियादी शिक्षापद्धति का विकास, सितम्बर 1939 द्वितीय विश्वयुद्ध में प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल द्वारा भारत के किसी भी नेता या पार्टी से परामर्श किए बिना ही भारत को युद्ध में ढकेल देना जीवनोपयोगी पदार्थ देश से बाहर, कांग्रेस का प्रांतीय सभाओं में से त्यागपत्र, महात्मा गाँधी द्वितीय विश्वयुद्ध में भारतीयों को झोंकने के प्रबल विरोधी, गाँधीजी का क्रिप्स द्वारा चर्चिल को सन्देश देना कि वे भारत के मोह को छोड़ दे, द्वितीय विश्वयुद्ध बाद भारतीय लोगों पर शोषण और अत्याचार की पराकाष्ठा, 1942 अगस्त के प्रथम सप्ताह में 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पारित, भारत छोड़ो आन्दोलन का नेतृत्व गांधीजी के कंधों पर आना, मुस्लीम लींग और कांग्रेस के बीच समझौते की बात गांधीजी द्वारा रखना, जिन्ना को हठाग्रह छोड़ने का गाँधीजी द्वारा आग्रह, 8 अगस्त 1942 को गवर्नर जनरल द्वारा कांग्रेस के प्रस्ताव को दुर्भाग्यपूर्ण घोषित करना, महात्मा गांधी और प्रमुख कांग्रेसी नेता के गिरफ्तार होने के कारण नेतृत्वहीन देशवासी, आन्दोलन अराजक और हिंसक बनना, अंग्रेज सरकार का दमनचक्र, अत्याचार से ग्रसित लोगों द्वारा ब्रिटिश संस्थानों पर आक्रमण, गाँधीजी के 21 दिन के उपवास का चर्चिल सरकार पर कोई प्रभाव नहीं होना, 20 फरवरी 1944 को आगा खां जेल में कस्तूरबा की मृत्यु, 5 मई गाँधीजी जेल में से मुक्त, 15 दिन का मौन व्रत, हिन्दुस्तान के सभी मुसलमान नहीं सहमत होने पर भी मुस्लीम लीग और जिन्ना का अधिवेशन में पाकिस्तान बनाने का प्रस्ताव पारित; जिन्ना के अनुसार पाकिस्तान का निर्माण मुस्लीम आबादी को लेकर नहीं बल्कि छः प्रान्त सिन्ध, पंजाब, उत्तर,पश्चिमी, सीमा प्रान्त, बलूचिस्तान, बंगाल और असम भी सम्मिलित होना; 2 अक्तूबर 1944 गाँधीजी के जन्मदिन पर देश-विदेश से तार एवं बधाइयां 75 वर्ष के जन्मदिन पर 'गाँधी' नामक अभिनन्दन पुस्तक महात्मा गाँधी को अर्पण, गांधीजी और बोझ के रास्ते अलग होना, एक महान अहिंसक तो दूसरा हिंसाव्रत धारी होना, सुभाषचन्द्र बोझ का रंगून में आजाद हिन्द के ध्वज के सलामी देते हुए गाँधीजी के लिए कहना कि 'हे राष्ट्रपिता, भारत की स्वतंत्रता के लिए हमने जो पवित्र युद्ध छेड़ रखा है उसमें आपके आशीर्वाद के हम आकांक्षी है।' गाँधीजी का

अपने जन्मदिन के अवसर पर देशवासियों को आपसी भेदभाव भूलकर स्वतंत्रता के लिए एकजुट होने का आह्वान, गाँधीजी का जिन्ना के टी.बी. के समान जानलेवा बीमारी से अनभिज्ञ होना, इंग्लैंड के चुनाव में चर्चिल की पार्टी की हार, लेबर पार्टी की सरकार का सत्तारुढ़ होते ही भारत से शासन तंत्र समेटने का निर्णय, हिन्दुओं और मुहम्मद अली जिन्ना के बीच बढ़ती खाई के कारण अंग्रेज सरकार का पशोपश में पड़ना, बंगाल में घोर अकाल 11 फरवरी 1946 को गाँधीजी द्वारा हरिजन अखबार में दु:स्थिति का वर्णन और इस स्थिति के लिए सरकार को दोषी ठहराना, यत्र-तत्र हिन्दू-मुस्लीम दंगे, गाँधीजी का नोआखली और बिहार का भ्रमण, 14 अगस्त, 1947 की मध्यरात्रि को देश आजाद, तभी महात्मा गाँधी का कौमी दंगो के स्थलों पर उपस्थित होना, मातृभूमि का विभाजन राष्ट्रपति के जीवन की अत्यन्त करूण क्षण साबित होना आदि-आदि।[139]

अन्तिम परिच्छेद 'हे राम' में विभाजन के पश्चात् दोनों देश दुष्परिणामों को झेलने के लिए विवश, महात्मा गाँधी द्वारा दिल्ली में विस्थापितों के दु:ख को बांटने के लिए सामग्रियों की भीख मांगना, दोनो समुदायों में सौहार्द लाने के लिए गांधीजी के उपवास, 15 तारीख को पाकिस्तान को 55 करोड़ रुपए लौटाने का निर्णय, 17 की संध्या को गांधीजी को बचाने के लिए डॉ. राजेन्द्र बाबू की अध्यक्षता में 130 लोगों की समिति में दोनों समुदायों के लोगों का उपस्थित होना, इस समिति में सर्व सम्मति से सात शर्तों का प्रस्ताव पास हो जाना, हिन्दू महासभा द्वारा इस मुसलमान प्रेमी (गाँधीजी) को समाप्त करने की प्रतिज्ञा, 20 जनवरी 1948 प्रार्थना सभा के बम विस्फोट में गाँधीजी का बच जाना, 30 जनवरी 1948 संध्या की प्रार्थना-सभा में नाथूराम गोडसे द्वारा गाँधीजी की छाती पर तीन गोलियां चलाना, अन्त में उनके मुख से 'हे राम' शब्द निकलना और उनके प्राण अनन्त पथ के पथिक हो जाना आदि महत्वपूर्ण बातों के विवरण के साथ उनके जीवन-अंत के प्रसंग का समायोजन हुआ है।[140]

इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास में महात्मा गाँधी के जीवन की बचपन से लेकर अंत तक की महत्वपूर्ण घटनाओं को यथार्थतः ढंग से उकेरा गयाहै। इनके विषय में 'गाँधी' पुस्तक के आलेख में अल्बर्ट आइन्स्टाइन बिलकुल सही लिखा है- ''आने वाली पीढ़ियों को शायद विश्वास नहीं होगा कि बहुत सारे मानवीय गुणों से ओत-प्रोत गाँधी के सदृश कोई, हाड़-मांस वाला व्यक्ति भी इस धरती पर कभी विचरा था।''[141]

भाषिक संरचना की दृष्टि से 'शान्तिदूत' उपन्यास पर विचार करे तो प्रतीत होता है कि उपन्यास की भाषा उसके विषय-वस्तु और परिवेश के अनुरूप है। डॉ. मिश्र के अन्य उपन्यासों की भाँति प्रस्तुत उपन्यास में भी अनेक संस्कृत शब्द पाए जाते है। यथा - मेघाच्छन्न, प्रत्युत्पन्न मतित्व, केलि-गृह, कामानुरक्ति, शीघ्रातिशीघ्र, क्रियान्वयन, स्वर्णांकित, असूर्यंपश्या, आसेतु, परमुखापेक्षी, दुर्भिक्ष, तिमिराच्छादित, अस्ताचलप्रस्थित, अहर्निश, विपथगा आदि-आदि।[142]

उपन्यास की विषय-वस्तु चूंकि गांधीजी से सम्बन्धित है इसलिए कुछ अरबी-फारसी के शब्द भी मिलते है, जैसे - गमीनत, मुकद्मा, मुआवजा, कागज़ात, हुक्मरान, मुहताज, माल असबाब, अलविदा, बेमिसाल, काबिलेगौर, तशरीफ, बेतरतीब आदि-आदि।[143]

महात्मा गाँधी का समूचा संघर्ष अंग्रेजों से रहा है। अतः उपन्यास में अंग्रेजी के शब्दों का आना भी स्वाभाविक ही कहा जाएगा। उपन्यास में अनेक अंग्रेजी शब्द आए हैं जिनमें से कुछेक को यहाँ उदाहरण के तौर पर दे रहे हैं - सी-सिकनेस, क्वालिफिकेशन, सांग सेलेश्चल, ब्रीफलेस, अपालॉजी, एग्रीमेन्ट, वैकेंसी, एसोशियेसन, रेसिस्टेन्स, एम्यूनिशन, एक्झास्टेड़, स्योरली, पोर्टेबिल, राशनिंग आदि-आदि।[144]

अन्य उपन्यासों की भाँति यहाँ भी रूपकों और विशेषणों का उपयुक्त प्रयोग हुआ है। उल्लेखनीय रूपकों में स्नेह-रज्जु, अवहेलना रूपी बाण, छाती की चट्टान, चिंताओं की लहरें, स्वाभिमान का सर्प, करूणा का समुद्र, आन्दोलन की आग, सूरज रूपी स्वर्णथाल, विश्वास की सुगन्ध, आशीर्वाद का कवच, आँधियों के बीज, गांधी रूपी दिनमान, स्वतंत्रता की अधकटी रोटी भूख की आग, बैरिस्टरी की बैसाखी, अपशब्दों की बौछार।[145] रुपकों की तरह कुछ काव्यात्मक विशेषणों का भी प्रयोग उपन्यासकार ने किया है। ऐसे विशेषणों में - आध्यात्मिक क्षितिज, झेंपू स्वभाव, प्रश्नवाचक दृष्टि, सड़ी-गली मान्यताएँ, अप्रत्याशित कठिनाइयाँ, जलपूरित आँखें, प्रशिक्षित स्वयंसेवक अवांछित मानवीय व्यवहार, उत्साहवर्धक विजय, स्मितिमुक्त चेहरे, असूर्यपश्या नारियाँ, सुकोमल गौरांग महिला, अवैतनिक पद, तिमिराच्छादित क्षितिज, घड़ियाली आँसू आदि को उल्लेखनीय कहा जा सकता है।[146]

डॉ. मिश्र के अन्य उपन्यासों की तरह यहाँ भी कहावतों का भरपूर प्रयोग हुआ है। कुछ का उल्लेख यहाँ कर रहे हैं - अब पछताये क्या होत है जब चिड़िया चुग गई खेत, हाथ कंगन को आरसी क्या, अन्त भला तो सब भला, प्रथम ग्रासे मक्षिका पातः एक पंथ दो काज, पत्थर को पसीजते कब और किसने देखा है, एक अनार सौ बीमार, समय जा चूका आदमी और डाल का चूका बन्दर नहीं बचता,

ढाक के तीन पात, सिर मुड़ाते ओला पड़ा, मरता क्या नहीं करता आदि-आदि।[147] इसमें ऐसा भी हुआ है कि उनके उपन्यासों में कुछ नई कहावतों के प्रयोग भी मिलते हैं जैसे - 'पत्थर को पसीजते कब और किसने देखा है?' तथा 'समय जा चूका आदमी और डाल का चूका बन्दर नहीं बचता।' कई बार वे किसी प्रसिद्ध कहावत का नए ढंग से प्रयोग करते हैं। जैसे - 'कौन कहता है कि होनहार बिरवान के पात चिकने होते है?[148] लेखक ने कहीं-कहीं अंग्रेजी कहावतों का भी प्रयोग किया है। 'एव्री सेन्ट हेज ए पास्ट एंड एव्री सिनर हैज ए फ्यूचर।' तथा 'टू किल टू बर्ड्स विद वन स्टोन।' आदि कहावतों का इसमें उल्लेख कर सकते हैं।[149]

कहावतों की तरह मुहावरों के भी खूब प्रयोग हुए है। इस दृष्टि से मिश्रजी की भाषा को हम मुहावरेदार भाषा कह सकते हैं। प्रस्तुत उपन्यास से भी हमने करीबन 233 जितने मुहावरे निकाले हैं जिनमें से कुछेक का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है - बम की तरह फटना, क्रोध का आसमान छूना, खार खाना, इक्के के टट्टू, , पाला पड़ना, एक कान से होकर दूसरे कान से निकल जाना, हुक्का पानी बंद हो जाना, हालत पतली हो जाना, कछुए की तरह अपनी खोल में बंद रहना, सर्प के बिल में हाथ डालना, मिट्टी पलीद होना, छत्तीस का रिश्ता होना, तूल पकड़ना, 'सी तक नहीं करना, शब्द को तौल कर लिखना, दाने-दाने के लाले पड़ना, पानी पानी करना, कच्ची गोलियाँ नहीं खेलना, आड़े हाथों लेना, घाव पर मलहम लगाना, मक्खियां मारना, पापड़ बेलना, कान खड़े हो जाना, सिर पर कफन बांधना, पगड़ी उछालना, कानों में तेल डालकर सोना, बिस्तर गोल करना, जीभ से पानी टपकना, हांशिए पर आ जाना, गाजर-मूली की तरह कटना, कोढ़ में खाज का काम करना आदि-आदि।[150]

डॉ. भगवतीशरण मिश्र के उपन्यासों में सूक्तियों का बाहुल्य भी देखा जा सकता है। प्रस्तुत उपन्यास भी उसमें अपवाद नहीं है। इसमें हमने करीबन चालीस जितनी सूक्तियाँ निकाली है, जिनमें से कुछेक का उल्लेख कर रहे हैं- (01) जननी-जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी। (02) अपने पेट को पशुओं की कब्रगाह नहीं बनाओ। (03) परोपकार ही पुण्य है और दूसरे को पीड़ा पहुँचाना ही पाप है। (04) त्रुटियों को निःशेष कर अपने व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाने में अवमानना और उपेक्षा से बढ़कर शायद ही कोई और समर्थ हो। (05) सत्य ईश्वर है। सत्य और अहिंसा के बल पर बड़ी-से-बड़ी ताकत का भी हम मुकाबला कर सकते हैं। (06) संघ में ही बल है । असंगठित रहकर हम अत्याचारियों-अनाचारियों का सामना नहीं कर सकते। (07) सत्याचारियों की सहायता ईश्वर अवश्य करता है।

(08) अपने नियत कर्म को करते जाओ। कर्मण्यता, अकर्मण्यता से निश्चित ही श्रेष्ठ है। (09) सच्चा धार्मिक वही है जो पहले कर्मी अथवा कर्ता है। जैसे आत्मा के बिना शरीर मृत है, उसी तरह कर्म के अभाव में धर्म का भी अस्तित्व नहीं है। (10) लेखनी में बहुत शक्ति है पर जैसे बाढ़ का निरंकुश पानी भारी बर्बादी का कारण बनता है, उसी तरह निरंकुश लेखनी विनाशकारी होती है। (11) कितने लोग महान पैदा होते हैं, कितनों के ऊपर महानता थोपी जाती है और कितनो को अपने श्रम और संकल्प के आधार पर महानता मिलती है। (12) समस्याएँ मानव की सहभागिनी हैं। (13) काल पुरुष पूर्णतया तटस्थ है। (14) दैवी अनुग्रह की परीक्षा नहीं प्रतीक्षा की जाती है। (15) बबूल बन बोने वाले कांटों की ही फसल काटते हैं। (16) सब चीजों की सीमा होती है। सब्र की भी, धैर्य की भी, प्रतीक्षा की भी।[151]

अतः कहा जा सकता है कि मिश्रजी के प्रस्तुत उपन्यास की भाषा भी भाषिक-संरचना की दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध और सम्पन्न हैं।

(03) पौराणिक उपन्यास

'पुराण' में 'इक' प्रत्यय लगाकर 'पौराणिक' शब्द व्युत्पन्न हुआ है। हमारे यहाँ इतिहास-पुराण कहने की रुढि है, परन्तु इतिहास और पुराण दोनों की विभावनाएँ अलग-अलग है। हमारे यहाँ इतिहास लिखने की परंपरा न होने के कारण हमारे पास केवल दो-ढाई हजार वर्षों का इतिहास है। जो इतिहास है वह भी पूर्णरूपेण कडीबद्ध नहीं है। कहीं-कहीं ऐतिहासिक शृंखला की कुछ कड़ियाँ अभी भी नहीं मिल रही हैं। अतः मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि दो-ढाई हजार वर्षों का इतिहास हमारे पास है तो उसके पूर्व क्या था? क्या उसके पूर्व समाज, राज्य, सभ्यता या संस्कृति नहीं थी? दूसरी तरफ कई विद्वान है जो हमारी सभ्यता और संस्कृति को पाँच हजार वर्ष से भी अधिक पुरानी मानते हैं। उस सभ्यता और संस्कृति का वर्णन हमें इतिहास ग्रंथो में तो नहीं मिलता परन्तु पुराणों में उसके संकेत मिलते हैं। अतः वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत तथा अन्य पुराणों में जो साहित्य उपलब्ध होता है, उसे हम पौराणिक साहित्य की संज्ञा देते हैं।

इस पौराणिक साहित्य पर, उसके कथा वृतान्तों पर जो उपन्यास लिखे जाते हैं उनको पौराणिक उपन्यास कहा जाता है। इतिहास प्रमाणभूत तथ्यों पर आधारित होता है। उसमें बिना प्रमाण के कोई भी बात कही नहीं जा सकती। इस अर्थ में वह

एक Objective विधा है। दूसरी तरफ पुराणों में प्रमाणभूत सामग्री नहीं होती। उसमें कल्पना, भावना तथा चमत्कारिक तत्वों का भी समावेश होता है। चमत्कारपूर्ण घटनाओं का उसमें खूब प्रयोग होता है। उदाहरणतया रामायण में पवनपुत्र हनुमान के उड़कर लंका जाने का तथा लक्ष्मण को शक्ति लगने पर जड़ीबुट्टी हेतु पूरा पहाड़ उठा लाने का उल्लेख मिलता है। यह चमत्कार पूर्ण घटनाएँ है। प्रमाणों और वास्तविक सत्यों पर ये घटनाएँ असत्य वा काल्पनिक लगती है। केवल भक्ति या श्रद्धा से ही हम इनको स्वीकृत कर सकते हैं। अतः नास्तिक प्रकार के लोगों की ये बातें कपोल कल्पित भी लग सकती है।

बहरहाल यहाँ हमारा उपक्रम पौराणिक उपन्यास को व्याख्यायित करने का है । संक्षेप में पौराणिक कथावृत्तों पर आधारित उपन्यास को पौराणिक उपन्यास कहा जाएगा। अब उपन्यास के सन्दर्भ में एक बात ठोक-बजाकर कही जाती है कि उपन्यास एक यथार्थ विधा है। उसमें यथार्थ का आग्रह सर्वाधिक प्रमाण में रहता है। बल्कि यथार्थधर्मिता ही उसका प्राण तत्व है। उसकी कथावस्तु, पात्र, कथोपकथन, देशकाल चित्रण आदि सभी में यथार्थता विशेष आग्रह पाया जाता है। दूसरी ओर पुराणों में तो ऐसी बहुत-सी बातें पायी जाती है जो यथार्थ के घरातल पर खरी नहीं उतर सकती। तब फिर पौराणिक वृतान्तों पर उपन्यासों का सृजन कैसे होगा? इस प्रश्न का उत्तर यह हो सकता है कि पौराणिक उपन्यासों में भी पात्रों के चरित्र चित्रण आदि में यथार्थ का ध्यान रखा जाय और कथावस्तु के चमत्कारिक अंगो को तर्कसंगत ढंग से प्रस्तुत किया जाय। उनका अर्थघटन आधुनिक ढंग से किया जाय। डॉ. नरेन्द्र कोहली ने रामायण और महाभारत की कथावस्तु को लेकर पौराणिक उपन्यासों की सृष्टि की है। डॉ. भगवतीशरण मिश्र भी, कोहली की तरह बिलकुल बौद्धिक धरातल पर पौराणिक वृतान्तों का तर्कसंगत अर्थघटन नहीं करते, तथापि यथासंभव तार्किक और वास्तविक बताने की चेष्टा वे अवश्य करते हैं।

पवनपुत्र (२००१)

पुनपुत्र हनुमान डॉ. भगवतीशरण मिश्र के इष्टदेवों में से एक है। 'भूमिका' में डॉ. मिश्र कहते है कि यह उपन्यास उन्होंने लिखा नहीं है, बल्कि उनसे लिखवााया गया है। यह तो अनेक बार निर्दिष्ट किया जा चुका है कि डॉ. मिश्र पूजा-पाठ करनेवाले, धार्मिक अनुष्ठानों में विश्वास रखनेवाले आस्तिक प्रकृति के विद्वान है। अतः उनका विश्वास है कि इस उपन्यास की रचना प्रक्रिया के दौरान कोई अदृश्य शक्ति उन्हें निरंतर प्रेरित करती रही है।

यह भी एक विचित्र और आध्यात्मिक संयोग है कि डॉ. मिश्र के दोनों चरित नायक पहला सूरज के शिवाजी और प्रस्तुत उपन्यास के हनुमान- आशुतोष भगवान शिव के अंशावतार माने गए हैं। हमारे पौराणिक देवताओं में शंकर भगवान और हनुमान ये दो देवता ऐसे हैं जिनके मंदिर प्रायः सभी गाँवों में पाए जाते हैं। भारत वर्ष का कोई ऐसा गाँव नहीं होगा, जहाँ देवाधिदेव भोले शंकर महादेव और हनुमान दादा का मंदिर न हो। हनुमान जहाँ पवनपुत्र हैं वहाँ शंकर सुवन - शिवपुत्र भी हैं। अतः प्रत्येक शिवालय में प्रायः गणेशजी और हनुमानजी की मूर्तियाँ भी होती हैं। प्रस्तुत उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है। स्वयं हनुमानजी अपनी कथा कहते हैं। इस शैली में लिखा गया कदाचित् यह प्रथम पौराणिक उपन्यास है।

प्रस्तुत उपन्यास के प्रणयन हेतु लेखक ने अनेक पौराणिक ग्रंथों का अनुशीलन-अध्ययन किया है। इन ग्रन्थों में वाल्मीकि रामायण, रामचरित मानस, कम्ब रामायण, (तमिल), अध्यात्म रामायण (गुजराती), मोल्ल-रामायण (तेलगू) श्री रामचरित पुराणम् (कन्नड़) भानु भक्त रामायण (नेपाली) पभृति रामायण विषयक ग्रन्थों के अतिरिक्त रघुवंश (कालीदास), उत्तर रामचरित (भवभूति), हनुमान नाटक, श्रीमद् भागवत पुराण, स्कन्द पुराण, शिव पुराण, पद्म पुराण आदि संस्कृत के काव्यग्रंथ तथा पुराणों को परिगणित कर सकते हैं।[152]

हनुमानजी के जन्म के सन्दर्भ में वाल्मीकि रामायण की किष्किंधा काण्ड में कथा मिलती है। इस कथा के अनुसार पुंजिकस्थली नामक अप्सरा अंजनी नाम से प्रसिद्ध थी। वह केसरी नामक वानरराज की पत्नी थी। एक बार जब वह सुन्दर सुशोभित वस्त्राभूषणों में सज्जित होकर खड़ी थीं तब वायुदेव का वहाँ आगमन होता है। वे अंजनी के रूप सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाते हैं। इस मोहासक्त अवस्था में वे अंजनी को अपने बाहुपाश में कस लेते हैं। अंजनी पहले तो घबड़ा जाती है, किन्तु वायुदेव उसे पुत्र का वरदान देते हैं। इसी वरदान से एक बालक का जन्म होता है। यही हनुमानजी है वायुदेव के पुत्र होने के कारण उनको 'पवनपुत्र' कहा जाता है। अंजनी वानरराज केसरी की पत्नी थी, अतः उनको 'केसरीनन्दन' भी कहा जाता है।

हनुमान को शंकर और पवनदेवता दोनों का पुत्र माना गया है। इस सन्दर्भ में 'शिवपुराण' में जो कथा मिलती है, वह इस प्रकार है । एक बार शिव किसी सुन्दर कामिनी स्त्री पर मुग्ध हो जाते हैं। परिणामतः उनका वीर्य स्खलित हो जाता है। नगाधिराज हिमालय इस वीर्य को शिव की प्रसादी समझकर संजोकर रख लेतें हैं। कालांतर में एक दिन अंजनी जब किसी पर्वत शिखर पर खड़ी थी पवनदेवता प्रभंजन अंजनी की रूप-राशि पर मुग्ध होते हुए हिमालय द्वारा संचित शिवजी के वीर्य को

अंजनी के गर्भ में स्थापित कर देते हैं। उसी वीर्य से जिस बालक का जन्म हुआ वह बालक है हनुमानजी।

हनुमानजी के जन्म की इस घटना को लेखक ने अपनी आस्था के अनुसार कुछ परिवर्तित-सा कर दिया है। उनके अनुसार ऋषि भारद्वाज तथा शिव दोनों की ओर से केसरी तथा अंजनी को पुत्र प्राप्ति का वरदान मिलता है। शिवजी अंजना को दर्शन देते हैं और कहते है - ''तुम्हें एक अत्यंत पराक्रमी पुत्र उत्पन्न होगा जिसकी गति अंतरिक्ष, पाताल और पृथ्वी तीनों में अबाधित होगी और जिसके समान योद्धा, गुणज्ञ और भगवद् भक्त न तो अब तक त्रैलोक्य में हुआ है और न भविष्य में होगा। स्वयं अपने एक अंश से अवतरित हो रहा हूँ मैं। रुद्रावतार होगा तुम्हारे आंगन में अंजना शंकर-सुत की ही संज्ञा पायेगा तुम्हारा तनय।''[153]

उस समय अयोध्या में राजा दशरथ पुत्रेष्टि यज्ञ करा रहे थे। यज्ञ के बाद अचानक एक चील खीर के एक डोने को उड़ाकर प्रभास तीर्थ की ओर निकल जाती है जहाँ अंजना अपनी तपस्या में लीन खड़ी थी। अचानक वह डोना अंजना की अंजुलि में आ गिरता है। तब पवनदेव प्रकट होकर अंजना को संबोधित करते है - ''अंजने, आशुतोष की प्रेरणा से ही मैंने यह चरु तुम्हें उपलब्ध कराया है। इसे सदाशिव और पवन का सम्मिलित आशीर्वाद समझकर ग्रहण करो। शिव के वरदान अनुसार तुम्हारा पुत्र शक्तिशाली और वेद-वेदांग पारंगत तो होगा ही, मेरे प्रसाद से वह मेरे वेग को भी प्राप्त करेगा। इस चरु के ग्रहण करते ही तुम्हें गर्भाधान होगा और इसे तुम तक पहुँचाने में प्रेरणा बनने के कारण आशुतोष के अंश से उत्पन्न तुम्हारा पुत्र, पवनसुत नाम से भी विख्यात होगा।''[154]

तीनसौ साठ पृष्ठों का यह बृहदकाय पौराणिक उपन्यास महाकाव्यात्मक रूपबन्ध को धारण किये हुए है। इसमें अनेकानेक घटनाओं का आलेखन हुआ है। उन घटनाओं में से कुछेक को सूचीबद्ध किया गया है:- (01) चैत्र मास शुक्लपक्षीय एकादशी और मंगलवार को हनुमानजी का जन्म, (02) भूख के कारण सूर्य को फल समझकर उसे निगलने को अंजनी पुत्र का लपकना, (03) देवताओं में हाहाकार, (04) इन्द्र के वज्र के कारण उनका मूर्छित हो जाना, (05) हनु (दाढी) टुंटने के कारण हनुमान कहलाए, (06) इन्द्र के वज्र को भी पचा जाने के कारण 'वज्र + अंग + बली = बजरंगबली नाम का प्रचलित होना, (07) हनुमानजी की बाल सुलभ अटखेलियों के कारण ऋषियों की तप-साधना में खलल पहुँचाना, (08) फलतः ऋषियों द्वारा अभिशप्त करना कि जब तक उन्हें कोई याद नहीं दिलायेगा उनको अपनी शक्ति का अभिज्ञान न होगा, (09) सूर्य द्वारा उनकी शिक्षा का प्रबन्ध तथा

माता अंजना द्वारा रामायण की कथा सुनाना, (10) हनुमानजी के मन में अपने आराध्य के दर्शन की उत्कट आकांक्षा और उस पर भगवान शंकर का मदारी वेश धारण करके अयोध्या में भगवान श्रीराम का दर्शन करवाना, (11) राम-लक्ष्मण जब शिक्षा हेतु विश्वमित्र के आश्रम में आते हैं तब हनुमानजी का समीपस्थ 'गंधमादन' पहाड़ी पर आ जाना, (12) हनुमान का सुग्रीव से मिलना, (13) राम-सीता का विवाह उनका वनगमन तथा सीता का अपहरण (14) वाली वध की घटना तथा सुग्रीव का किष्किंधा के सिंहासन पर आरुढ़ होना, (15) सीता की खोज के लिए हनुमानजी का लंका के लिए प्रस्थान, (16) रास्ते के व्यवधान-सर्पिणी द्वारा जबडो को खोलना, हनुमानजी का उसके अन्दर प्रविष्ट होकर बाहर निकल जाना, सिंही द्वारा उनका रास्ता रोकना, गदा-प्रहार द्वारा उसे यम-सदन पहुँचाना, (17) लंकिनी-हनुमान संवाद, (18) ब्राह्मण का वेश धारण करके विभीषण से मिलना, (19) उसके बाद की घटनाओं में अशोक वाटिका में जाना, त्रिजटा द्वारा स्वप्न कथन की बात करना, सीताजी को ढाढ़स बंधाना, हनुमानजी द्वारा राम की अंगूठी दिखाना, अक्षयकुमार का वध, मेघनाद द्वारा हनुमान का बंधना, रावण की सभा में उसे अपमानित करना तथा लंका-दहन आदि घटनाएँ, (20) राम-लक्ष्मण से भेंट, सेतु निर्माण गिलहरीवाला प्रसंग, हनुमानजी का शिवलिंग के लिए कैलाश जाना आदि घटनाएँ (21) युद्ध से पहले संधि का प्रस्ताव तथा रावण द्वारा उसकी अस्वीकृति फलतः युद्ध, (22) लक्ष्मण का मूर्छित होना तथा हनुमानजी द्वारा संजीवनी बुट्टी को लाना, (23) कुंभकर्ण, त्रिशिरा, मेघनाद, इन्द्रजीत आदि का वध, (24) अहि रावण द्वारा राम-लक्ष्मण का अपहरण तथा हनुमानजी का पाताल लोक में जाकर अहि रावण का वध करके राम-लक्ष्मण को पुनः ले आना, (25) रावण वध की घटना, (26) राम का राज्याभिषेक उसके बाद हनुमानजी सम्बन्धी कुछ घटनाओं का उल्लेख जैसे हनुमानजी के अमरत्व की बात, हनुमानजी के संगीतज्ञ होने की बात, हनुमान विवाह की बात, मंथरा के प्रस्ताव से हनुमानजी का बिदकना, शनिदेव तथा हनुमानजी की बातचीत, (27) रामजी के आदेश पर लक्ष्मणजी द्वारा सीताजी को जंगल में छोड़ आना तथा इस घटना को लेके हनुमानजी का क्षुब्ध होना, (28) अश्वमेध यज्ञ, लव-कुश के साथ राम-सेना का युद्ध, शत्रुघ्न का मूर्छित होना, (29) अश्वमेध की समाप्ति तथा सीता का भूमि-प्रवेश (30) उपसंहार की घटनाओं में श्रीकृष्णजी के संकेत पर हनुमानजी द्वारा भीम, गरूड, चक्र, रुक्मिणी आदि का गर्व मदन करना।

इस प्रकार इस बृहदकाय पौराणिक महाकाव्यात्मक उपन्यास में आस्था और

भक्ति भाव पूर्वक लेखक ने श्री हनुमानजी के चरित्र का, उनकी भक्ति और शक्ति का आलेखन तो किया ही है परन्तु जिस प्रकार हनुमानजी रामजी से अभिन्न नहीं है ठीक उसी प्रकार यह हनुमान गाथा राम-गाथा से अलग कैसे हो सकती है।

'पवनपुत्र' डॉ. मिश्रजी का पौराणिक आख्यानों पर आधारित उपन्यास है। यदि वह पौराणिक आख्यानों तक ही सीमित रहता तब तो उसके कृतित्व का कोई अर्थ न रह जाता परन्तु लेखक द्वारा निर्मित पवनपुत्र हनुमान मानववादी हनुमान है। उपन्यास में अनेक स्थानों पर पवनपुत्र के मानववादी सूर श्रुतिगोचर होते हैं। हनुमानजी युद्ध के देवता माने जाते हैं। तथापि अनेक स्थानों पर व्यर्थ की हिंसा और युद्धों के खिलाफ बोलते हैं। यहाँ विश्वमानव की परिकल्पना करते हुए दिखाई पड़ते हैं।

अग्निपरीक्षा के बावजूद केवल लोकोपवाद से बचने के लिए सीता को पुनः वनवास देना राम कथा का एक कलंकित अध्याय है। हनुमानजी भी इस घटना से क्षुब्ध हो जाते हैं और अनेक दिनों तक संज्ञा-शून्य अवस्था में रहते हैं। इस सन्दर्भ में वे कहते हैं - "यह मेरे जीवन का सबसे दुःखद दिन था इसकी पूर्व कल्पना भी असंभव थी, अतः वज्रपात था यह - साक्षात् दुर्भाग्य का दारुण ताण्डव। भाग्य-विधाता वाम हो गए थे, मेरे ही नहीं सौमित्र के, भरत, शत्रुघ्न के बल्कि सम्पूर्ण अयोध्या के ही।"[155]

इस सन्दर्भ में डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय आलोचनात्मक ढंग से लिखते है - "'पवनपुत्र' में हनुमान राम के सीता के प्रति क्रूर, आदर्शवादी, अमूर्त मर्यादावाद का विरोध तो नहीं करते, पर वह क्षुब्ध अवश्य होते हैं और यह क्षोभ या दुःख ही उन्हें अनुकरणीय बनाता है।"[156]

सीता के भूमि-प्रवेश को लेकर हनुमानजी की टिप्पणी भी उनके मानवीय दृष्टिकोण को स्पष्ट करती है। यथा "अग्नि ने तो वापस कर दिया था वैदेही को अपनी लपटों की गवाही देकर पर नहीं वापस की थी पृथ्वी ने अपनी पुत्री, इस कतृघ्न संसार को। श्रीराम और उनके दरबारी हाथ मलते ही रह गए थे और चली गई थी सीता रसातल को।....... टूट गया था मेरा मन उसी दिन पूरी तरह और तब से टूटा दिल लिए ही डोल रहा हूँ में।"[157]

डॉ. भगवतीशरण मिश्र हिन्दू धर्म में पूर्ण आस्था रखनेवाले लेखक है, परन्तु हिन्दू धर्म में व्याप्त जातिवाद के वे विरोधी है। इस जातिवाद से हमारे देश को कितनी क्षति हुई है उसका वे बराबर वर्णन करते हैं- "यह नहीं कि मेरे आराध्य श्रीराम के द्वारा समर्थित सिद्धान्त में कोई गलती थी। हुआ यह कि उन्होंने जिस

सतर्कता की बात बात की थी, सामाजिक कर्णधारों से जिस सजगता की अपेक्षा की थी, उसी का अभाव हो गया। कालक्रम से व्यक्ति के कर्म को नहीं, गुण को नहीं; जन्म को, जाति को उसकी पहचान बना दिया गया। वर्ण-व्यवस्था जाति-व्यवस्था के रूप में रूढ़ और विकृत हो आई। जिसे सामाजिक संतुलन और प्रेम तथा भाईचारे का आधार बनना था वह घोर अव्यवस्था, घृणा व ईर्ष्या का कारण बन गई। दुर्दशा इस चरमसीमा तक पहुँची कि जिस देश का अवतार द्वापर में हर जीव में भगवान को देखता है (ईश्वरः सर्वभूतानां हृदेशे अर्जुन तिष्ठति) उस देश के ही वासियों ने स्पृश्यों और अस्पृश्यों की श्रेणियों में व्यक्तियों को विभक्त कर दिया और किसी-किसी की तो छाया से भी लोगों को छूत लगने लगी देह तो देह उसका प्रतिबिम्ब भी अश्पृश्य हो आया। यह जातिगत विभेद, सम्प्रदायगत भेद कम घातक नहीं है। मनुष्य-मनुष्य के मध्य जो सहज स्नेह बंधन होना चाहिए, उसका प्रबल शत्रु है ये। प्रेम-रज्जु को सर्प-रज्जु में परिवर्तित करने का श्रेय इन्हीं को ही है। तो क्या यत्न है इसका? धर्म-गत और जाति-गत विद्वेष को समाप्त करने का क्या उपाय है?..... आप मूर्तियों को गढ़ने, मन्दिरों का निर्माण करने और देवी-देवताओं को भेंट-भोग निवेदित करने में तो दक्ष हैं पर मनुष्य-मनुष्य के मध्य स्नेह-सेतु के निर्माण, विश्व के विद्वेष, घृणा, ईर्ष्या और शत्रुता को निःशेष करने की ओर आप का ध्यान न के बराबर है।''[158] इस प्रकार हम देख सकते हैं कि लेखक न हिन्दू धर्म के मानवीय सरोकारों को प्राधान्य मिला है। मानवीय चिन्ता ही उपन्यास और अत एव लेखक की चेतना के केन्द्र में है।

भाषा की दृष्टि से 'पवनपुत्र' उपन्यास का विचार करे तो प्रतीत होता है कि यहाँ भी मिश्रजी की संस्कृत बहुला भाषा के दर्शन होते हैं। उपन्यास के पौराणिक रूपबन्ध को देखते हुए यह समुचित भी है। उपन्यास में अनेक संस्कृत शब्दों का प्रयोग हुआ है जिनमें से कुछेक का उल्लेख नीचे किया जा रहा है- मैथिल कोकिल, अनुद्घाटित, रक्त-कमल, अलौकिक प्रणीतता, सुरम्य सरित-प्रवाह, पुत्रेष्टि यज्ञ, शुक्लपक्षीय एकादशी, स्वर्णिम बिम्ब, बलिष्ठ भुजा, पार्श्ववर्ती, प्रकाश प्रदाता, आदित्य भूतभावन आशुतोष विगलित स्वर, गन्धवाही पवन, शतदल रक्त-कमल, शिखरस्थ शाखा-मृग, वाम स्कन्ध, क्रोधाभिभूत, दशग्रीव रावण, सपित पंक्ति, तेजोदीप्त मुख, अपहृता भार्या, रम्य गिरि-कन्दरा, अति आहलादित स्वरूप, घनीभूत बाष्प, निरभ्र आकाश, अमृतोपम, जैविक ऊर्जा, गगनाचारी पक्षी, स्वर्णमंडित अट्टालिका, गुप्त अभियान, द्विरेफ पंक्ति, अपदस्थ, रक्ताभ, प्रत्युपन्न मति, तुच्छ कपि, द्रवित स्वर्ण, गौरांग रात्रि, अरक्षित पुरी, पुनीत दायित्व, अद्वितीय समर, तपोनिष्ठ

ऋषि, दर्शनीय देह-यष्टि, प्राणदायिनी, अर्द्धनारीश्वर, मेधावी शिक्षार्थी, युगल मूर्ति, मलीन आनन, उत्फुल्ल पद्म-पुष्प, पूर्ण सलिला सरयू स्वर्णिम रोमावलि आदि-आदि।[159]

'पवनपुत्र' की कथा रामभक्त हनुमानजी से सम्बन्धित है। अतः प्रस्तुत उपन्यास में गोस्वामी तुलसीदास विरचित मानस के कई उद्धरण आए हैं जिनमें अवधि भाषा का प्रयोग हुआ है। कुछ शब्द उल्लेखनीय है - तीरा, नीरा, भौरा, भतिया, विछोहू, उतराई, बिगरहिं, बिनसई, उपजई, निसिचर, खायउँ, जिन्ह, निबाहू, उजियार, रखबारे, जहाजु, जानब आदि-आदि।[160]

अन्य उपन्यासों की तरह यहाँ भी हमें कुछ विशेष प्रकार के विशेषण उपलब्ध होते हैं। जैसे - तर्कशील बुद्धि, गन्ध-वाही वायु, सर्वग्रासी भूख, दारुण दग्धता, सर्वग्रासी अन्धकार, अशरीरी संवाद, अर्थपूर्ण दृष्टि, ईश्वरीय विधान, अछोर आकर्षण, अबूझ भाषा, उर्वर मस्तिष्क, कालदर्शी कल्पना, कर्णभेदी ध्वनि, अकथनीय कथन, अगाध विश्वास, नमकीन गन्ध, आकाशव्यापी आकार, शूलनुमा नाखून, देव-दानवजयी त्रैलोक्यपति परमवीर रावण, मद्यपायी दैत्य, वायवीय इच्छा, ईश्वरीय अनुग्रह, स्नेहिल आंच, निराधार लांछना, अकारण अनुकम्पा आदि-आदि।[161]

विशेषणों की तरह कुछ नए प्रकार के रूपक भी उपलब्ध होते हैं। जैसे ज्ञान-दान-यज्ञ, भविष्य का गर्भ, संशय की रेखाएँ, सौहार्द की आश्वस्ति, हड्डियों का पहाड़, प्रतिभा-सरिता, प्रलय के बादल, कोप की लपटें, अवसाद की गहरी वादियाँ, अहंकार-नाग, मृदु मुस्कान की वर्षा, धर्म-रथ, संशय की छाया, धनुष रूपी जहाज, सौभाग्य-कपाट, चिन्ता-सर्पिणी, अभाव का कंटक, अन्धकार के पर्दे, अहंकार के अंकुर आदि-आदि।[162]

डॉ. मिश्र के अन्य उपन्यासों की तरह प्रस्तुत उपन्यास में भी पुष्कल परिमाण में सूक्तियाँ मिलती है। उनमें से कुछ का उल्लेख यहाँ कर रहे हैं- (01) शोक सारे सद्गुणों को निःशेष कर देता है। दुश्चिन्ता सर्वप्रथम आत्मविश्वास को ही निर्मूल करती है। (02) सहज शंकालु मन अर्थ का अनर्थ कर बैठता है। (03) हर कर्म को तटस्थ भाव से करो तो कष्ट का बोध नहीं होता। (04) किसी की पराजय पर विजयोत्सव मनाना मनस्वियों का धर्म नहीं। (05) उत्साह ही सफलता और असफलता के मध्य का अन्तर है। (06) बल देकर कहने मात्र से कोई गलत बात सही नहीं हो जाती, न सौ बार भी कहने से कोई मिथ्या सत्य बन सकता है। (07) प्रार्थना शक्ति सर्वोच्च शक्ति है।[163]

डॉ. मिश्र की भाषा में मुहावरेदानी मिलती है। कुछ मुहावरे उल्लेखनीय है - सिर पर पैर रखना, प्राण कंठगत हो जाना, होड़ लेना, प्रश्नचिह्न नहीं लगाना, बात को तूल देना, गाज बनकर गिरना, नख-सिख कांप जाना, लंका को लपटों के हवाले कर देना, पैर उखड़ना, ईंट से ईंट बजा देना, इन्द्रियों को कर्णवत् करना, भाग्य का वाम हो जाना, हाथ को हाथ नहीं सूझना, गाजर मूली भी नहीं होना, किसी से उन्नीस रहना आदि-आदि।[164]

मुहावरों की तरह कहावतों का प्रयोग भी मिलता है। कुछेक का उल्लेख हम कर रहे हैं - अन्धा क्या चाहे, दो आँखें, यह मुँह और मसूर की दाल, शुभस्य शीघ्रम्, जैसा अन्न वैसा मन, मरता क्या न करता आदि-आदि।[165] कहीं-कहीं कहावत का प्रयोग लेखक ने अलग ढंग से भी किया है। जैसे गागर में ही सागर भरनें में सफलता प्राप्त की है। दीपक तले का अंधेरा दीपक को कहाँ दिखाई पड़ता है? सुबह का भूला शाम को घर आ गया था आदि-आदि।[166]

इस प्रकार भाषा की दृष्टि से 'पवनपुत्र' उपन्यास मिश्रजी के अन्य उपन्यासों की तरह सम्पन्न और समृद्ध है।

प्रथम पुरुष

डॉ. भगवतीशरण मिश्र का यह पौराणिक उपन्यास - 'प्रथम पुरुष' कृष्ण के चरित्र पर आधारित है। कृष्ण का चरित्र एक अद्‌भुत चरित्र है । भारत की लगभग सभी भाषाओं और बोलियों में कृष्ण के चरित्र पर कुछ न कुछ लिखा गया है। कृष्ण का यह चरित्र सरल नहीं है, बड़ा जटिल है। जीवन के जिस क्षेत्र को उन्होंने स्पर्श किया उसको ऊँचाई पर पहुँचा दिया। वह अपने समय के महान योद्धा, महान राजनीतिज्ञ, महान धर्मनीतिज्ञ, महान प्रेमी, महान संगीतकार और क्या-क्या न थे। बचपन में वे बड़े नटखट और शरीर थे। कृष्ण का यह शैशव जीवन लोगों को इतना भा गया है कि छोटे शिशु के लिए बाल गोपाल शब्द प्रचलित हो गया है। महाप्रभु वल्लभाचार्य द्वारा प्रस्थापित पुष्टि मार्ग में तो कृष्ण के बाल स्वरूप को ही आराध्य माना गया है। राधा-कृष्ण शब्द भारतीय साहित्य में युगल प्रेम का समानार्थी बन गया है। भारतीय भाषाओं के लोकगीतों में जितना स्थान राधा-कृष्ण को मिला है शायद ही किसी पौराणिक पात्र को मिला हो।

राम और कृष्ण भारतीय जीवन और अत एव भारतीय साहित्य के दो महा नायक है। किन्तु इनके जीवन कथन में हमें कई विरोधाभासी तत्व मिलते हैं। राम

त्रेता युग में हुए, कृष्ण द्वापर में। एक का जन्म ताराजड़ित खुले आकाश वाली रात में हुआ, दूसरे का बरसाती झंझावाती मेघली रात में। एक का जन्म राजमहल में, दूसरे का कैदखाने में। एक का जीवन पहले सुख-सम्पन्नता में और बाद में दु:खो और संघर्षों में बीता, तो दूसरे को शुरु में बहुत संघर्ष करना पड़ा पर बाद में सुख-सम्पन्न और वैभवी जीवन मिला। राम एक पत्नीव्रती तो कृष्ण की अनेक प्रेमीकाएँ और रानियाँ थी। एक सदा रोता रहा, एक सदा हँसता रहा। राम की पत्नी का हरण हुआ, कृष्ण ने रुकमणी का हरण किया। एक नीति-नियमों और मर्यादाओं में बंधे रहे तो दूसरे ने यथावश्यक उनका उल्लंघन किया। डॉ. धर्मवीर भारती ने 'अंधायुग में बलराम द्वारा बिलकुल सही कहलवाया है - ''जानता हूँ मैं तुमको शैशव से / रहे हो सदा से मर्यादाहीन, कूटबुद्धि।''[167]

यहाँ पर हमारे विभागाध्यक्ष प्रो. पारूकांत देसाई का एक दोहा स्मृति में कौंध रहा है-

''राघव-राधव नाम सो, समज लियो सब सार।

एक मरजादन में रहे, एक मरजादन बाहर॥''[168]

राघव लिखते समय घ शिरोरेखा के नीचे रहता है, जबकि राधव लिखते समय ध शिरोरेखा को तोड़कर ऊपर निकल जाता है।

राम का चरित्र सीधा-सादा-सरल चरित्र है। अत: वह प्रबन्ध काव्य के अनुकूल है। कृष्ण का चरित्र जटिल है। पकड़ में नहीं आता अत: उस पर मुक्तक काव्य की रचना अधिक हुई। हरिऔधजी द्वारा प्रणीत 'प्रियप्रवास' तथा द्वारिकाप्रसाद मिश्र द्वारा रचित 'कृष्णायन' को छोड़कर हिन्दी में राधा और कृष्ण तथा कृष्ण और गोपियों को लेकर पद रचना अधिक हुई है। गुजराती में कनैयालाल माणेकलाल मुनशी ने कृष्ण चरित्र को लेकर 'कृष्णावतार' नामक उपन्यासमाला की सृष्टि की है। प्रथम पुरुष में डॉ. भगवतीशरण मिश्र ने कृष्ण की शैशवावस्था से लेकर युवावस्था तक की घटनाओं को औपन्यासिक रूप दिया है।

कृष्ण का जो रूप मध्यकालीन भक्ति साहित्य में मिलता है, वैसा स्वरूप प्राचीनतम भारतीय साहित्य में नहीं मिलता। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने ग्रन्थ 'मध्यकालीन धर्मसाधना' में कृष्ण के स्वरूप के सन्दर्भ में स्पष्ट किया है कि प्राचीन साहित्य में कृष्ण की शृंगार-लीलाओं का वर्णन नहीं मिलता है। वे लिखते हैं कि कृष्णावतार के दो मुख्य रूप हमारे सामने आते हैं। एक में वे यदुकुल के श्रेष्ठ नायक है, रत्न हैं, वीर हैं, राजा हैं और कंसारि हैं। दूसरे रूप में वे गोपाल हैं,

गोपीजन वल्लभ है और राधा के अधरों का पान करने वाले वनमाली हैं। पुराने गन्थों में कृष्ण के प्रथम रूप का वर्णन मिलता है। कृष्ण के दूसरे रूप का वर्णन मध्यकालीन साहित्य में मिलता है।[169]

डॉ. भगवतीशरण मिश्र ने 'कृष्णावतार' को लेकर दो उपन्यासों की रचना की है - 'प्रथम पुरुष' और 'पुरुषोतम' । 'प्रथम पुरुष' में कृष्ण जन्म से लेकर उनके मथुरागमन तक की घटनाओं को लिया गया है तो 'पुरुषोत्तम' में द्वारिका - गमन से लेकर महाभारत के युद्ध और उसके बाद कृष्ण के मृत्यु तक की घटनाओं का आलेखन हुआ है। इन दोनों उपन्यासों के प्रणयन में डॉ. मिश्र ने बड़े संयत ढंग से काम लिया है। जिन प्रसंगो को लेकर बुद्धिजीवी लोग कृष्ण के चरित्र पर लांछन लगाते हैं, उन प्रसंगों को उन्होंने परिष्कृत रूप में रखा है। 'प्रथम पुरुष' के कृष्ण कंस का वध करने वाले एक जन नायक हैं। इस सन्दर्भ में डॉ. इला मिस्त्री लिखती हैं - मिश्रजी के कृष्ण गोपाल हैं, गोपीजन वल्लभ भी हैं, नंद-यशोदा और गोप-गोपिकाओं के दुलारे और व्रज की आँखों के तारे अवश्य हैं, परन्तु उनका शरीरी मांसल प्रेम यहाँ नहीं है, नहीं है उनकी काम - क्रीड़ाएँ, नहीं है वे अनर्गल लंपट लीलाएँ क्योंकि वृन्दावन में वे केवल ग्यारह साल की अवस्था तक ही रहे थे और आठ-दस साल का बच्चा ये सब नहीं करता परन्तु जैसे कोई सुन्दर स्वस्थ नटखट-चंचल-वाचाल बच्चा सबको प्यारा लगने लगता है, ठीक उसी प्रकार यहाँ कन्हैया ब्रज-मंडल के लोगों की आँखों का तारा बना हुआ है। उसे देखते ही सबके मन-मयूर नाचने लगते हैं। कंठ गीत गाते हैं, पैर थिरकते हैं। फिर यह नगर-संस्कृति नहीं, ग्रामीण संस्कृति है, जहाँ इस प्रकार का बच्चा सबका प्यारा हो ज़ाए तो उसे सहज ही समझा जाएगा। दूसरे नंदबाबा और जशोदा मैया भी ब्रज मंडल के सामान्य लोग नहीं थे। वे उनके मुखिया थे, राजा थे। अतः उनके बच्चे को बेतहाशा प्यार करना लोक-भावना के विपरीत नहीं है।''[170]

मध्यकालीन भक्ति साहित्य में राधा को परकीया के रूप में चित्रित किया है, परन्तु यहाँ ऐसा नहीं है। राधा बरसाना के मुखिया वृषभानु की पुत्री है और कृष्ण के साथ बाकायदा उसकी सगाई होती है परन्तु बाद में वृषभानु को जब ज्ञात होता है कि मथुरा नरेश कंस और कृष्ण में दुश्मनी है, तो अपनी प्रिय पुत्री के भविष्य का विचार करते हुए वे उस सगाई को तोड़ डालते है। ग्वाल, आभीर, आहीर (गुजरात की रबारी जाति) आदि जातियों में शैशव काल में ही सगाई कर देने की परंपरा है और ऐसी सगाइयाँ कई बार टूटती भी हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने राधा-कृष्ण के अलौकिक - दिव्य प्रेम को

अभिव्यंजित किया है। राधा-कृष्ण की सगाई तो टूट जाती है, परन्तु उनका वह अशरीरी प्रेम (Platonic love) अटूट रहता है। राधा आजीवन अविवाहित रहने का प्रण लेती है। इस प्रकार मिश्रजी की राधा परकीया नायिका नहीं है। स्वयं मिश्रजी उपन्यास में निरूपित राधा के सन्दर्भ में कहते हैं - ''मेरी राधा न तो परकीया है, न कृष्ण की विवाहिता, न उनकी शय्या-संगिनी, वह मात्र उनकी प्रेरणा है, उनकी आह्लादिनी शक्ति, उनकी सर्वस्व। दोनों में प्रेम है, किन्तु वह मांसल नहीं है और न है वह पार्थिव। मेरे राधा-कृष्ण में द्वैत है ही नहीं, न है लिंग-भेद । वे एक-दूसरे को स्त्री-पुरुष के रूप में न देखकर मात्र राधा और कृष्ण के रूप में देखते हैं। मेरी राधा ही कृष्ण है और मेरा कृष्ण ही राधा।''[171]

पूर्ववर्ती पृष्ठों में निर्दिष्ट किया जा चुका है कि ऐतिहासिक-पौराणिक उपन्यासों का प्रणयन कोई बच्चों का खेल नहीं है। उसमें लेखक को गहन अध्ययन, अनुशीलन तथा अनुसंधान की राह से गुजरना पड़ता है। प्रस्तुत उपन्यास के लेखन के लिए भी लेखक को अनेकानेक संस्कृत ग्रन्थों का दोहन करना पड़ा है। इन संस्कृत ग्रन्थों में ब्रह्म पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, हरिवंश ,पुराण, पद्म पुराण, श्रीमद् भागवत, गीता, महाभारत, विष्णु पुराण, महाभारत पुराण तथा गर्ग संहिता आदि मुख्य हैं।[172]

'प्रथम पुरुष' तथा 'पुरुषोत्तम' इन दो उपन्यासों के द्वारा लेखक ने कृष्ण के मनुष्य से भगवान होने की प्रक्रिया को रेखांकित किया है। इस प्रकार यहाँ लेखकीय चिंतन 'पवनपुत्र' से एक कदम आगे बढ़ गया है। जहाँ 'पवनपुत्र' विशुद्ध रूप से एक पौराणिक आख्यान है वहाँ कृष्ण-जीवन पर आधारित यह उपन्यास कहीं-कहीं ऐतिहासिक उपन्यास की परिधि को स्पर्श करता है। इस सन्दर्भ में स्वयं लेखक का कथन है - ''मैंने इस पुस्तक में कृष्ण को भगवान के रूप में न देखकर मनुष्य के रूप में देखने का प्रयास किया है। यह बात पृथक् है कि यह मनुष्य शनैः शनैः मनुष्यत्व को लांघता हुआ देवत्व और अंततः ईश्वरत्व को प्राप्त कर लेता है। इस पुस्तक के प्रणयन के समय मेरा दृष्टिकोण स्पष्टतः यह रहा है कि भगवान पैदा नहीं होता बल्कि बनता है। राम को भी भगवान माने तो राम भगवान के रूप में पैदा नहीं हुए थे अपितु उनके कर्तव्यों-उनकी वीरता, उनके शौर्य, उनका त्याग, उनके दैवी गुणों ने उन्हें धीरे-धीरे भगवान बनाया । आज लोग बुद्ध, महावीर जैन तथा ईशा (क्राइस्ट) को भी भगवान मानने लगे हैं। भागवतकार ने भी बुद्ध को ईश्वर का अवतार माना है। ये सारे ऐतिहासिक पुरुष है और मनुष्य से भगवान बने हैं न कि भगवान बनकर ही पैदा हुए।''[173]

यह लेखक के अग्रवादी चिन्तन का ही परिणाम है कि उन्होंने कृष्ण के उस

रूप को लिया है जो उन्हें एक ऐतिहासिक महानायक प्रमाणित करता है। अन्यथा मध्यकालीन भक्त कवियों द्वारा लोक मानस में कृष्ण का जो स्वरूप है, वह तो उनके चरित्र को अत्यन्त कुत्सित बनानेवाला है। इस सन्दर्भ में स्वयं लेखक का कहना है - ''स्थिति आज यह है कि जो कोई भी स्वेच्छाचारी, कामुक, वारांगनाओं से घिरा पाया जाता है, उसे लोग कृष्ण की संज्ञा दे देते हैं। यह उनकी अज्ञानता के अलावा और कुछ नहीं है। रास लीला का उल्लेख 'श्रीमद् भागवत' में ही आता है और सह स्पष्ट है कि ग्यारह वर्ष से अधिक आयु तक श्रीकृष्ण वृन्दावन में रहे ही नहीं। वे मथुरा प्रस्थान कर गए, कंस का वध किया और फिर आगे के कार्य - कलापों में लग गए। अब यह सोचने की बात है कि ग्यारह वर्ष का बालक, जो रास-लीला करता है उसकी प्रकृति कैसी होगी? जो लोग रासलीला में काम वासना को ढूँढते हैं, वे अपनी कामुकता को ही एक किशोर पर आरोपित करने के अपराध के सिवा और कुछ नहीं करते। अगर भागवतकार ने भी एकादशवर्षीय कृष्ण की रासलीला पर केलि-क्रीड़ा का रंग चढ़ाने का प्रयास किया है तो वह भी इसी अपराध का भागी बनता है।''[174]

'संस्कृति के चार अध्याय' नामक अपने इतिहास ग्रन्थ में डॉ. रामधारीसिंह 'दिनकर' कृष्ण के सन्दर्भ में जो टिप्पणी दी है, वह बहुत ही महत्वपूर्ण है। यथा- ''कृष्ण ऐतिहासिक पुरुष है, इसमें सन्देह करने की कोई गुंजाइश नहीं देखती और वे अवतार के रूप में पूजित भी बहुत दिनों से चले आ रहे हैं। उनका सम्बन्ध फसल और गाय से था यह भी विदित बात है। प्राचीन ग्रन्थों में उनके साथ जो प्रेम की कथाएँ नहीं मिलती, उससे भी यही प्रमाणित होता है कि वे कोरे प्रेमी और हलके जीव नहीं, बल्कि देश और धर्म के बहुत बड़े नेता थे। अवश्य ही गोपाल लीला, रासलीला और चीरहरण की कथाएं तथा उनका रसिक रूप बाद के भ्रान्त कवियों और आचारच्युत भक्तों की कल्पनाएँ है, जिन्हें इन लोगों ने कृष्ण चरित्र में जबरदस्ती ठोंस दिया। शको के ह्रास-काल में जिस प्रकार महादेव का रूपान्तर लिंग में हुआ, उसी प्रकार गुप्तों के अवनति काल में वासुदेव का रूपान्तर व्यभिचारी गोपाल में हुआ।''[175]

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने कृष्ण-जन्म से लेकर कंस-वध तक की अनेक घटनाओं को लिया है। यह कृष्ण के शैशव और किशोर अवस्था का उपन्यास है। इसमें प्रमुख रूप से निम्नलिखित घटनाओं को लिया है:- (01) देवकी - वसुदेव विवाह, (02) कंस द्वारा उस दैवी आकाशवाणी को सुनना जिसमें कहा गया था कि देवकी की आठवीं सन्तान कंस का वध करेगी, (03) फलतः कंस द्वारा देवकी-

वसुदेव को कारावास में डाल देना, (04) पहरेदारों को भुलावे में डालकर वसुदेव की दूसरी पत्नी रोहिणी का बंदीखाने में आकर एक रात के लिए वसुदेव से सहवास करना, (05) उस सहवास के परिणाम स्वरूप रोहिणी के यहाँ बलराम का पैदा होना, (06) कंस द्वारा देवकी वसुदेव की सन्तानों की एक-एक करके हत्या, (07) आठवीं सन्तान के जन्म समय पर कुछ अगमनिगम कारणों से पहरेदारों पर नींद का बुरी तरह से छा जाना और इन गफलतों के चलते कृष्ण-जन्म होते ही वसुदेव द्वारा कृष्ण को गोकुल में नंदबाबा के यहाँ पहुँचाने में तथा जशोदा की सद्य:जाता बालिका को कारावास तक ले आने में सफल हो जाना, (08) बालिका को देवकी की आठवीं सन्तान समझकर पत्थर पर मारने से पहले ही निष्प्राण समझकर कंस का चले जाना, (09) पुनः आकाशवाणी का होना कि कंस का काल अवतरित हो चुका है और उसे सुनकर कंस द्वारा आसपास के सभी नवजात बच्चों का वध करवाना, (10) गर्गाचार्य द्वारा कृष्ण-बलराम का नामकरण तथा भविष्य कथन, (11) कृष्ण-बलराम का बढ़ना तथा पूतना-वध, शकटासुर का वध, तृणावर्त की मृत्यु आदि घटनाएँ, (12) कृष्ण की मोहक छवि तथा उनकी अट्टखेलियों का वर्णन, (13) राधा के पिता वृषभानु का नंद-जशोदा के यहाँ राधा-कृष्ण की सगाई का प्रस्ताव लेकर आना, (14) राधा-कृष्ण का वार्तालाप तथा उसमें राधा की कृष्ण को सलाह कि खूब मक्खन खाकर उन्हें अपना शरीर बलिष्ठ बनाना चाहिए ताकि कंस का वध करने में वो सशक्त प्रमाणित हो, (15) कृष्ण के लिए राधा का प्रेरणामूर्ति होना, (16) कृष्ण-बलराम द्वारा बाल-सेना का निर्माण, (17) माखन चोरी द्वारा साथियों को खूब मक्खन खिलाना तथा उन्हें मल्ल युद्ध तथा कुस्ती के दाव़पेच सिखाना, (18) बलराम द्वारा कृषि का अभियान, (19) राधा का कृष्ण की छवि को प्यार करना, (20) राधा और ललिता का सख्य, (21) कृष्ण और उनके साथियों के साथ मोज-मस्ती तथा व्रज की गोपियों के साथ शरारतें, (22) जशोदा के पास कृष्ण की अनेकानेक शिकायतों का पहुँचना, (23) गर्गाचार्य द्वारा नंदबाबा को सलाह कि वे सब गोकुल को छोड़कर रातोरात वृंदावन पहुँच जाए, (24) राधा के भविष्य से चिन्तित होकर वृषभानु द्वारा राधा की सगाई तोड़ने का विचार, (25) राधा की प्रतिज्ञा, (26) कालीय नाग का दमन तथा कृष्ण द्वारा गोवर्धन पूजा का प्रचलन, (27) गोवर्धन-पूजा से इन्द्र का कुपित होना और कृष्ण द्वारा इन्द्र-कोप से सभी व्रजवासियों की रक्षा, (28) दूसरी तरफ कंस द्वारा कृष्ण को मरवाने के अनेकानेक प्रयत्न जिनमें वत्सासुर, बकासुर, अघासुर, धेनुकासुर, प्रलम्बासुर जैसे कंस के एक से बढ़कर अनेक ऐसे प्रसिद्ध मल्लों का कृष्ण द्वारा मारा जाना, (29) कंस का षड़यंत्र

- जिसमें धनुष यज्ञ के बहाने कृष्ण को आमंत्रित कर चाणुर और मुष्टिक तथा कुवलयापीड़ हाथी के द्वारा कृष्ण को मरवाने की योजना, (30) अक्रूर के साथ कृष्ण बलराम का मथुरा के लिए चल पड़ना, (31) नंद-जशोदा, राधा तथा गोपियाँ, वृज मण्डल के लोगों आदि का रोना-कलपना, (32) कृष्ण-बलराम का मथुरा प्रवेश तथा कुब्जा का उद्धार, (33) कृष्ण-बलराम का धनुष हेतु कंस की रंगशाला में प्रवेश, (34) कृष्ण द्वारा कुवलयापीड़ को पराजित करना, (35) कृष्ण के हाथों चाणुर तथा बलराम के हाथों मुष्टिक की मृत्यु, (36) कृष्ण द्वारा कंस का वध तथा कंस के सेनापति दुर्धष की बलराम के हाथों मृत्यु, (37) कृष्ण-बलराम का जयघोष, (38) प्रजा में आनंद और उमंग की लहर, (39) देवकी के पिता उग्रसेन की मुक्ति तथा राज्याभिषेक आदि-आदि।

यह उपन्यास एक पौराणिक उपन्यास है, कहीं-कहीं चमत्कारपूर्ण घटनाओं का उल्लेख भी मिलता है किन्तु यथासंभव उसे तर्कपूर्ण बनाने का प्रयास भी लेखक ने किया है। कंस के दरबार में धनुष-भंग कैसे होगा, उसकी युक्ति भी मारुत कृष्ण को पहले से बता देते हैं। कंस के दरबार की तमाम राजनीतिक गतिविधियों का ज्ञान कृष्ण-बलराम को रहता है। डॉ. नरेन्द्र कोहली ने रामायण पर आधारित 'दीक्षा' उपन्यास में जिस प्रकार धनुष भंग की घटना का उल्लेख किया है और एक युक्ति द्वारा उसे सम्पन्न करवाया है, लगभग उसी प्रकार की पद्धति यहाँ डॉ. मिश्र ने अपनायी है।

कृष्ण-बलराम, वृज-मण्डल, राधा तथा गोपियों से सम्बद्ध घटनाओं के समानान्तर लेखक ने बड़ी कुशलता से कंस के दरबार की राजनीतिक गतिविधियों को भी उद्‌घाटित किया है। कंस के अन्यायी और अत्याचारी व्यवहार के कारण क्रमशः लोकमत उसके विरुद्ध हो जाता है। महाराज उग्रसेन के पुराने अमात्य सुधर्म प्रजा को जागृत करने का कार्य करते हैं। सुधर्म और गुप्तचर विभाग के अमात्य मारुत लोककल्याण की भावना से प्रेरित होकर मिल जाते हैं। ये दोनों अपनी राजनीतिक प्रयुक्तियों से कंस के शक्तिशाली और बुद्धिमान महाअमात्य विकट को कंस से दूर करने में सफल हो जाते हैं। इसमें वे कंस के सत्तालोलुप सेनापति दुर्धष को भी अपने में सम्मिलित कर लेते हैं। इस प्रकार राजनीतिक दृष्टि से कंस को शक्तिहीन कर देने के उपरान्त कृष्ण-बलराम कंस को पराजित करते हैं। इन सब में लेखक अपनी राजनीतिक सुझ-बुझ का परिचय देते हैं।

लेखक पौराणिक उपन्यास लिख रहे हैं परन्तु उनके मानस में भारत की सांस्कृतिक एकता और अखण्डता की बात बैठी हुई है। इसके सम्यक आलेखन के लिए ही वे बलराम की सांस्कृतिक यात्रा का आयोजन करवाते हैं। यथा- ''इसी

बहाने मैं इस आर्य-भूमि के सारे तीर्थों का भी परिभ्रमण कर लूँगा। राष्ट्रीय एकता और अखण्डता के प्रतीक ये तीर्थ शताब्दियों से समग्र राष्ट्र को एकसूत्र में पिराने का प्रयास करते आए हैं, पर यह हमारी मूर्खता है कि आज हम इस पवित्र धरती को टुकडों में बाँट बैठे हैं - कहीं मथुरा है तो कहीं मगध, कहीं चेदी है तो कहीं काशी, कहीं अवन्तिका तो कहीं विदर्भ ।''[176] इस प्रकार पौराणिक गवाक्ष से वर्तमान को दिखाने की चेष्टा भी लेखक स्थान-स्थान पर करते रहे हैं।

लेखक इस पुराण कथित कथा में यह भली भाँति निरूपित करते हैं कि प्रजा का विद्रोह अंततः अत्याचारी और दमनकारी शासक को दूर कर देता है। उस समय कोई न कोई शक्ति नायक के रूप में उभरकर आती है। प्रजा विद्रोह को संगठित करने की शक्ति जिसमें होती है वही सच्चा नायक कहलाता है। यहाँ पर कृष्ण-बलराम में उस संगठन शक्ति के दर्शन हमें होते हैं। संगठन शक्ति के अतिरिक्त प्रजा कल्याण हेतु रचनात्मक कार्यक्रम भी सच्चे नायक के पास होना चाहिए। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने भली भाँति उद्घाटित किया है कि पशुपालन और कृषि के द्वारा भारतभूमि को धन-धान्य से सम्पन्न करने की इन दोनों भाइयों की योजना है। उसका भी उल्लेख उपन्यास में हुआ है। यथा ''पूरे राष्ट्र में घूम-घूमकर मुझे हल के महत्व को, धरती के महत्व को, कृषि-कार्य के महत्व को समझाना है। रत्नगर्भा ही नहीं, अन्नदा भी है यह धरती। पर लोगों की उपेक्षा से इसका अधिकांश भाग बंजर, बियाबान और व्यर्थ पड़ा है। वंध्या हो आई है वह। सिंचाई के साधनों के अभाव में भी वह अन्न के पौधे समय से पहले ही सूख जाते हैं। ऐसे असंख्य हल होंगे लोगों के हाथ में। आज के युग में इससे बड़ा कोई औजार नहीं कृषि-कार्य के लिए। हम इससे धरती को कर्षित तो करेंगे ही, नदियों के किनारे काट नेहरे भी बनाएँगे। व्यर्थ बहे जा रहे जल को खेतों, उद्यानों तथा उपवनों तक पहुँचाएँगे।[177]

इस प्रकार पौराणिक उपन्यास के द्वारा भी लेखक वर्तमान भारत के लिए कुछ संकेत और दिशा निर्देश देते हैं। बड़े बांध न सही, नदियों के किनारे काट-काटके भी नेहरें बनायी जा सकती हैं। ध्यान रहे कोल्हापुर नरेश की सिंचाई योजना कुछ-कुछ इसी तर्ज की थी। यह हमारे देश की विडंबना है कि जब देश के एक भू-भाग में बाढ़ आती है तो दूसरा भू-भाग सूखाग्रस्त होता है। वस्तुतः समग्र देश की नदियों को नेहरों द्वारा जोड़ देने की डॉ. वी.के.आर वी.राव की योजना मूर्खतापूर्ण नहीं थी। इसका एहसास अब तो हमें कम से कम हो जाना चाहिए।

प्रस्तुत उपन्यास की भाषिक संरचना के सन्दर्भ में निश्चितः कह सकते हैं कि यहाँ भी संस्कृत शब्द पुष्कल परिमाण में प्राप्त होते हैं जो उपन्यास के पौराणिक

रूपबन्ध को देखते हुए स्वाभाविक भी है। कुछ शब्दों का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है- ध्यानगत, वृन्त, सूर्य तनया, प्रोद्भासित, पितृव्य, दुहिता, दुरभिसन्धि, अनुजा, सारथ्य, पयोद, अश्वत्थ पत्र, कुक्षि, दधि, तमिस्रा, कशाघात, मरू-कान्तार, गज-शावक, मूषक, गो-वत्स, शालिचूर्ण, मार्जन, नासिकारन्ध्र, निशापति, उष्ट्र, वर्तिका, उत्कोच, प्रत्यूष, स्कन्ध, नर-शार्दूल, वार्द्धक्य आदि-आदि।[178]

मिश्रजी के अन्य उपन्यासों की तरह यहाँ भी कुछ विशिष्ट प्रकार के विशेषण प्राप्त होते हैं। विशेषणों की स्पष्टता के लिए यहाँ पर विशेषण तथा विशेष्य दोनों का उल्लेख किया जा रहा है। ऐसे विशेषणों में शर्मनाक चित्रण, सूर्य तनया जमुना, मधुसिंचित मुसकान, सद्यः जाता बालिका, सूचि-भेद बाण, लौह ऊँगलियाँ, तटस्थ पर्यवेक्षक, रूपहली चांदनी, लता-गुल्म-संकुल वृक्षावलियाँ, गन्धवाही मन्द बयार, अननुभूत मादकता, नेतृत्वहीन मानसिकता, पुष्पित वल्लरी, आस्थावान वृद्धाएँ, मरणधर्मा धरती, अनन्त सिलसिला आदि उल्लेखनीय है।[179]

विशेषणों की तरह प्रस्तुत उपन्यास में भी कुछ नए रूपक प्राप्त होते हैं जिनमें से कुछेक का उल्लेख यहाँ कर रहे हैं। यथा - पुराणों अथवा इतिहासों का अथाह सागर, रात की गहराती स्याही, काल के गाल, विचारों की भूल-भुलैया, हँसी के फव्वारें, सतरंगी सपनों का मायाजाल, मन का आकाश, कन्हैया रूपी अण्डा, बुद्धि रूपी अश्वों की वल्गा, क्रोध की आँच, संकोच की झीनी चादर, उद्विग्नता के मेघ आदि-आदि।[180]

पूर्व विवेचित उपन्यासों की तरह यहाँ भी कहावतों और मुहावरों का प्रयोग मिलता है। कहावतों में निम्नलिखित उल्लेखनीय है - (01) न रहेगा विष-वक्ष न लगेगा उसमें विष-फल(यह 'न रहेगा बाँस न बजेगी बासुरी' वाली कहावत का नवोदित रूप लगता है।) (02) किसी ने किसी पक्षी को अपना अण्डा सेते देखा है? (03) पूत के पाँव पालने में ही देखे जाते हैं। (04) वह साँप को तो मारना चाहता था पर लाठी को भी सुरक्षित रखना चाहता था। (सांप भी मरे और लाठी भी न टूटे इस कहावत का नए ढंग से प्रयोग) (05) यमुना मैया में दो गागर पानी अधिक कि दो गागर कम। (06) वन का सिंह भी दूसरे का शिकार किया पशु नहीं खाता। (07) कांटे को कलेजे में बहुत देर तक कोई पाल नहीं सकता, (08) जल में डूबते को तिनके का नहीं नौके का सहारा मिल जाय तो उसके जल-भीगे मुख की आभा देखी है किसी ने? (यहाँ पर 'डूबते को तिनके का सहारा' वाली कहावत का नए ढंग से प्रयोग किया है) (09) जो गुड़ देने से ही मर जाय उसे विष देने की क्या आवश्यकता है? आदि-आदि।[181]

कहावतों की तरह मुहावरों का प्रयोग तो अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है। जिनमें से कुछेक का उल्लेख यहाँ कर रहे हैं - रंग चढ़ाना, बिछ-बिछ जाना, हाथ को हाथ नहीं सूझना, काल-कवलित हो जाना, जान में जान आना, दृष्टि बंधी रह जाना, हवा से बातें करना, तलवार से तलवार भिड़ाना, कान खड़े हो जाना, कुंडली मारकर बैठना, किसी से उन्नीस नहीं बीस होना, काम तमाम करना, धूल चटाना, सिर पर पैर रखकर भागना, पैर पलोटवाना, दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ना, आँखों में बसा लेना, कलेजा मुँह को आना, बात का आई-गई हो जाना, घोड़े बेचकर सोना, घुटने टेकना, दाल में कुछ काला होना, ऊँट की पीठ का अन्तिम तिनका सिद्ध होना आदि-आदि।[182]

इस प्रकार भाषिक संरचना की दृष्टि से 'प्रथम पुरुष' एक सम्पन्न उपन्यास है।

पुरुषोत्तम (1992)

'पुरुषोत्तम' उपन्यास भी कृष्ण जीवन पर आधारित है। वस्तुतः इसे हम 'प्रथम पुरुष' का उत्तरार्ध कह सकते हैं। जहाँ 'प्रथम पुरुष' की कथा भागवत पर आधारित है वहाँ 'पुरुषोत्तम' की कथा पर 'महाभारत' का अधिक प्रभाव है। प्रस्तुत उपन्यास का कथानक कंस-वध के बाद से शुरु होता है। कंस वध से उसकी दोनों पत्नियाँ - अस्ति और प्राप्ति-भारी विलाप करती हैं। उन्हें इस बात का दुःख है कि कृष्ण ने कंस का वध क्यों किया। उन्हें बंदी भी बनाया जा सकता था। अतः वे खूब रोती-बिलखती है।

कंस-वध के पश्चात् कृष्ण और बलराम मथुरा जन-पद की राजसत्ता पर पुनः उग्रसेन को स्थापित करते हैं। अस्ति और प्राप्ति अपने पिता जरासंध के पास जाना चाहती है। अतः बलराम के संरक्षण में उनको मगध-नरेश जरासंध के पास भेज दिया जाता है। अपनी बेटियों को इस रूप में देखकर जरासंध अत्यन्त क्रोधित होता है और कृष्ण से प्रतिशोध लेने के लिए मथुरा पर बार-बार आक्रमण करता है। जरासंध के इन आक्रमणों से मथुरा के प्रजाजनों का बड़ा अहित हो रहा था अतः कृष्ण और बलराम मथुरा को छोड़ने का विचार करते हैं और मथुरा से काफी दूर द्वारिका चले आते हैं और उसे अपनी राजधानी बनाते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास एकसौ आठ अध्यायों में विभक्त है। प्रारम्भ के चवालीस अध्यायों में कंस-वध के पश्चात् की घटनाओं से लेकर स्यमंतक मणि की कथा तक के प्रसंगो को लिया गया है। जरासंध से अठारह-अठारह युद्ध, कालयवन का चढ़

आना, कृष्ण-बलराम का द्वारिका-गमन, कृष्ण के विवाह, रुक्मिणीहरण, उसके कारण अनेक राजाओं से युद्ध, बाणासुर से युद्ध, कोशल नरेश नग्नजित के सात बलशाली वृषभों को नाथकर सत्या से विवाह करना, भौमासुर का वध करके सात हजार निर्दोष किशोरियों को बचाना, जाम्बवान की पुत्री जाम्बवती से विवाह, सुदामा प्रसंग, सत्राजित का प्रायश्चित करना और प्रायश्चित स्वरूप अपनी पुत्री सत्यभामा का कृष्ण से विवाह करना, उषा-अनिरुद्ध का प्रेम-विवाह, रानियों के सम्मुख राधा के प्रेम-प्रसंग की चर्चा में कृष्ण द्वारा राधा के प्रेम की उत्कृष्टता का प्रमाण देना आदि प्रसंग इन अध्यायों में समाविष्ट है।

पैंतालीसवें अध्याय में पांडवों के लाक्षागृह वाले प्रसंग से महाभारत की कथा इसके साथ जुड़ती है। पैंतालीसवें अध्याय से अड़सठवें अध्याय तक पांडवों से जुड़ी महाभारत कथा के अनेक प्रसंग आते हैं। इनमें लाक्षागृह में पांडवों का बचाव, द्रौपदी स्वयंवर, राजसूय यज्ञ, भीम द्वारा जरासंघ का वध, राजसूय यज्ञ में अग्रपूजा हेतु श्रीकृष्ण का चयन, उस सन्दर्भ शिशुपाल का विरोध करते हुए कृष्ण को गालियाँ सुनाना, सौ गालियों के उपरान्त सुदर्शन में चक्र द्वारा शिशुपाल का वध, इन्द्रपस्थ के रूप में पांडवों की नई राजधानी की स्थापना, उस हेतु आयोजित उत्सव में द्रौपदी का दुर्योधन के प्रति परिहास, मामा शकुनि से मिलकर प्रतिशोध की योजना, द्यूत में पांडवों की हार, एकवस्त्रा-रजस्वला द्रौपदी का चीर-हरण, भीम की प्रतिज्ञा, पांडवों का तेरह वर्षों का वनवास तेरहवें वर्ष में विराट नगर में उत्तरा-अभिमन्यु का विवाह, वनवास के उपरांत पांडवों को उनका राज्य देने के सन्दर्भ में मुकर जाना, स्वयं कृष्ण का संधि-प्रस्ताव लेकर जाना, दुर्योधन की कूटनीति, कृष्ण का विराट स्वरूप धारण करना, कृष्ण का कर्ण से मिलना, कृष्ण द्वारा रहस्यस्फोट कि कर्ण कुंता का ही पुत्र है, रहस्यस्फोट के बाद भी कर्ण का दुर्योधन के पक्ष में अटल रहना, विदुर के आतिथ्य का स्वीकार, कृष्ण के पास सहायता हेतु दुर्योधन तथा अर्जुन उभय का जाना, दुर्योधन को अपनी यादव-सेना देना, कृष्ण द्वारा अर्जुन का सारथ्य स्वीकृत करना, युद्ध की तैयारियाँ आदि कथाएँ मुख्य है।

कुरुक्षेत्र का युद्ध अठारह दिनों तक चलता है। महाभारत के इस महासमर में अन्ततोगत्वा पांडव विजयी होते हैं। पांडवों को यह विजय बड़े भारी जीवनमूल्यों की कीमत पर मिलती है। इसका चित्रण अड़सठवें अध्याय से लेकर एकसौ आठवें अध्याय तक चलता है। उसमें प्रारम्भ के सोलह अध्यायों में गीता के श्लोकों की विवेचना मिलती है। इसे हम प्रकारन्तर से गीता पर लिखा हुआ भाष्य भी कह सकते हैं। लोकमान्य बालगंगाधर तिलक के 'गीता रहस्य' के प्रभाव को यहाँ रेखांकित किया

जा सकता है। इसके उपरान्त डॉ. रामधारीसिंह 'दिनकर' द्वारा प्रणीत खंडकाव्य 'कुरुक्षेत्र' के प्रभाव को भी यहाँ परिलक्षित कर सकते हैं। गीता पर लिखे इन अध्यायों के सन्दर्भ में स्वयं लेखक की टिप्पणी इस प्रकार है - "गीता में भले ही कृष्ण ने कुछेक बार और अर्जुन उनसे भी कम बात बोलते हो पर मेरे गीता प्रसंग में अर्जुन पूर्णतया वाचाल है और उनकी तर्कशक्ति श्रीकृष्ण से वह सब कुछ उगलवा लेती है जो वह कहना चाहते हैं। इतना ही नहीं, उपन्यास का यह भाग गीता की टीका न होकर भी, एक तरह से टीका ही है।"[183]

अध्याय अठासी से महाभारत के युद्ध का वृत्तान्त चलता है। जिनमें भीम के भीषण युद्ध से कौरवों के मनोबल का टूटना, पांडवों के परम भक्त सात्यकि के दसों पुत्रों की मृत्यु, आठवें दिन के युद्ध में भीम द्वारा दुर्योधन के आठ पुत्रों की मृत्यु, शिखंडी की सहायता से भीष्म का वध, उनका बाण-शय्या पर लेटना, चक्रव्यूह के युद्ध में छलप्रपंच द्वारा अभिमन्यु का वध, उसके उपरान्त अभिमन्यु के हत्यारे जयद्रथ के वध के लिए अर्जुन की प्रतिज्ञा, अर्जुन की प्रतिज्ञा से लाभ उठाते हुए अर्जुन को आत्महत्या के लिए प्रेरित करने की कौरवों की कुटिल रणनीति, कृष्ण द्वारा रचित माया-जाल से जयद्रथ-वध का सम्पन्न होना और इस प्रकार अर्जुन की प्रतिज्ञा पुर्ण होना,कर्ण और भीम पुत्र घटोत्कच के बीच भयंकर युद्ध, कर्ण द्वारा घटोत्कच के लिए उस शक्ति का प्रयोग जो वह अर्जुन पर करने वाला था, घटोत्कच की मृत्यु, गुरु द्रोण के वध के लिए कृष्ण प्रेरित अर्धसत्य की रणनीति जिसमें अश्वत्थामा की मृत्यु घोषणा 'नरो वा कुंजरो वा' के रूप में की जाती है तत्कालीन युद्धनीति के तमाम नियमों की ताक पर रखते हुए अर्जुन द्वारा गुरु द्रोण का वध, उसी प्रकार अधर्म नीति से अर्जुन द्वारा कर्ण का वध, कौरवों के अन्तिम सेनापति शल्य का भी वध, अन्त में केवल अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कृतवर्मा और दुर्योधन का जीवित रहना, प्राण रक्षा हेतु दुर्योधन का जल में छिप जाना, पांडवों द्वारा उसको खोज निकालना, दुर्योधन और भीम का गदायुद्ध, महायुद्ध के नियमों का उल्लंघन करते हुए भीम द्वारा दुर्योधन का मारा जाना, दुर्योधन की अनुचित मौत तथा अपने पिता गुरु द्रोण के अनुचित वध से उत्प्रेरित अश्वत्थामा का द्रौपदी के पाँच पुत्रों की हत्या कर देना, हस्तिनापुर के सिंहासन पर युधिष्ठिर का अभिषिक्त होना आदि घटनाओं को लिया गया है।

एकसौ आठ अध्याय के उपरान्त अन्तिम परिच्छेद 'उपसंहार' का है। उपन्यास के इस भाग में श्रीकृष्ण के जीवन की अन्तिम घटनाओं को प्रस्तुत किया गया है। महाभारत के युद्ध के पश्चात् छत्तीस वर्षों तक श्रीकृष्ण द्वारिका पर शासन करते हैं। बलराम तीर्थयात्रा पर चले जाते हैं। यहाँ पर श्रीकृष्ण और यदुवंशियों को गांधारी

तथा ऋषियों का जो शाप था उसकी कथा आती है। सत्ता के मद में यादव विलासी, शराबी और दुराचारी होते गए। युगपुरुष कृष्ण भी उनके विनाश को रोक नहीं पाए। समुद्र तट पर परस्पर लड़ते हुए वे कट मरे। यात्रा से लौटने पर बलराम ने जब यादवों के विनाश की बात सुनी तो वे इस आघात को बर्दाश्त नहीं कर पाए। समाधिस्थ होकर इन्होंने अपने प्राण त्याग दिए। यादवों के विनाश तथा अग्रज बलराम के इस प्रकार के निधन से दुःखी कृष्ण जंगल में जब एक वृक्ष के नीचे बैठे थे तब गांधारी शाप के अनुसार एक व्याध का बाण उनके पैर के तलवे में लगा और उससे उनकी मृत्यु हो गई।

यादवों को ऋषियों का जो अभिशाप मिला था उसकी भी एक पौराणिक कहानी है। द्वारिका में एक बार महाज्ञानी और तपोपूत ऐसे ऋषियों का दल आया था। सत्ता के मद में छककर यादव अत्याचारी और विलासी और उच्छृंखल भी हो गए थे। ऋषियों का मजाक उड़ाने के लिए साम्ब नामक एक युवक को वे लोग युवती का वेश पहनाकर उन ऋषियों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं और उनसे पूछते है कि इस युवती को क्याहोगा? पुत्र या पुत्री? ऋषि तो महाज्ञानी और भविष्यवेत्ता थे। यादव युवकों की इस उच्छृंखलता से क्रोधित होकर वे इनको अभिशाप देते हैं। इसके गर्भ से एक मूसल पैदा होगा जो तुम सब लोगों का विनाश करेगा। समय आने पर साम्ब के गर्भ से सचमुच मूसल पैदा हुआ तब वे लोग डर गए। उन्होंने उस मूसल को जला डाला और उसकी राख को समुद्र किनारे फेंक आए। परन्तु ऋषियों का शाप व्यर्थ नहीं गया। राख के चूर्ण से समुद्र तट पर कंटकयुक्त घास उग आई और उसी घास से परस्पर लड़ते हुए उनका विनाश हुआ था। बहेलिये ने श्रीकृष्ण को जिस बाण से मारा था उस बाण की नोंक पर भी उसी मूसल का अंश लगा हुआ था।[184]

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने कृष्ण, अर्जुन, भीम, युधिष्ठर, बलराम आदि की वीरता और उदात्तता का चित्रण तो किया ही है, परन्तु साथ की साथ कर्ण और दुर्योधन जैसे पात्रों के साथ भी न्याय किया है। महाभारत के युद्ध में कौरव योद्धाओं की मृत्यु हो जाती है और उनके पक्ष में कुछ इने-गिने लोग ही रहते हैं तब दुर्योधन के समक्ष संधि-प्रस्ताव रखा जाता है। दुर्योधन के चरित्र की उदात्तता के दर्शन यहाँ होते हैं। उसका उत्तर बड़ा ही संवेदनापूर्ण और वीरोचित है। यथा "अब जब मेरे निन्यानवें भाई, पितामह भीष्म, गुरु द्रोण और कर्ण सब मेरे लिए मृत्यु का वरण कर चुके हैं तो में अपने प्राणों की रक्षा के लिए संधि करु?"[185] उसी प्रकार अन्त में अपनी विद्या का उपयोग करते हुए दुर्योधन सरोवर के जल में छिप जाता है। एक व्याघ्र के संकेत पर पांडव उसे ढूँढ निकालते हैं। उस समय युधिष्ठिर अति उत्साह में

एक चूक कर जाते हैं वे दुर्योधन को कहते हैं कि तुम द्वन्द्व युद्ध में हममें से किसी भी एक को यदि पराजित कर देते हो तो हम अपने पराजय को स्वीकार कर लेंगे। युधिष्ठिर की यह बहुत बड़ी गलती थी। वे एक प्रकार से जीती हुई बाजी हार रहे थे। यहाँ दुर्योधन चाहता तो नकुल या सहदेव को चुन सकता था जो अपेक्षाकृत उससे कमजोर थे। परन्तु यहाँ भी वह अपनी उदात्तता और वीरोचित गरिमा का परिचय देता है। वह अपने समकक्ष योद्धा भीम का वरण करता है।

डॉ. भगवतीशरण मिश्र के प्रस्तुत उपन्यास में भी उनकी संस्कृत बहुल प्रवृत्ति मिलती है। कुछ शब्दों को यहाँ उदाहरण स्वरूप दे रहे हैं - वृन्दा, मातुल, धातृ, स्यंदन, उष्ट्र, पद त्राण, हस्तामलकवत्, भेषज्ञ, प्रकोष्ठ, पितृव्य, वीथी, पयस्विनी, तुमुल निनाद, सविता, कुशा, तड़ित विलास, किंकर्तव्यविमूढ़, द्राक्षा, क्षेत्रज्ञ, धृति, तुषारापात, यवनिका, सूर्यांशसंभूत, बुभुक्षित, श्लथ आदि-आदि।[186]

उनके अन्य उपन्यासों की तरह यहाँ भी कुछ विशिष्ट प्रकार के विशेषण उपलब्ध होते हैं, जैसे - संत्रासक सन्नाटा, कंटक-निर्मित किरीट, रश्मिपुंज सविता, अन्वेषक बुद्धि, निर्णायक मोड़, अशरीरी सम्बन्ध, पीयूष-वर्षिणी किरणें, खिलखिलाता चांद, अपरिभाषित आकर्षण, अहंकारपूर्ण दृष्टि-निक्षेप, उत्पातकारी इन्द्रियाँ, प्रश्न-भरी आँखें आदि-आदि।[187] यहाँ पर कुछ विशेषण पदबंध भी प्राप्त होते हैं, जैसे - डोलती, मचलती, मदमाती द्विरेफ पंक्तियाँ; बिलखती, विवर्णमुखा, सिन्दूरविहीना विधवाएँ; हिलोरे लेते, राशि-राशि सलिल संकुल सागर; पतला सा संकीर्ण सर्पिल पथ; विशाल, रक्ताभ और विस्तृत नेत्र; अनचीन्हा, अनदेखा, महत्वहीन और पहचानरहित सा समय आदि-आदि।[188]

कुछ विशिष्ट प्रकार के रूपक भी यहाँ उपलब्ध होते हैं। जैसे कल्पना के पंख, वैधव्यग्रस्त जीवन की क्षितिज, पलकों रूपी तटों का बन्धन, वचनों की असह्य आँच, प्रेम, स्नेह और वात्सल्य की बाढ़, पांडित्य और ज्ञान का जलयान, अन्धी दौड़ का आखेट, बातों के वात्याचक्र, श्वासों की सीढ़ियाँ, होठों की कैद, संभावनाओं की बैसाखी, कौरवों का भाग्याकाश आदि-आदि।[189]

अन्य उपन्यासों की भाँति प्रस्तुत उपन्यास में भी मुहावरेदार भाषा के दर्शन होते हैं। कुछ मुहावरें यहाँ दिए जा रहे हैं - खार खाना, पत्थर की रेखा मानना, झांसे में आ जाना, पैर उखड़ना, आठ-आठ आँसू बहाना, मुँह की खाना, अंगूठा दिखाना, टेढी खीर सिद्ध होना, सिर आँखों पर उठाना, कुंडली मारकर बैठ जाना, रेत से तेल निकालना, ईंट का उत्तर पत्थर से देना, एक ढेले से अनेक शिकार करना

आदि-आदि।[190] कहीं-कहीं उन्होंने प्रचलित मुहावरों में कुछ शाब्दिक परिवर्तन भी किए है। जैसे प्रचलित मुहावरा है। 'पत्थर की लकीर होना' किन्तु उन्होंने 'लकीर' के स्थान पर 'रेखा' कर दिया है। इसी तरह प्रचलित मुहावरा है 'इंट का जवाब पत्थर से देना'। यहाँ पर भी उन्होंने 'जवाब' के स्थान पर 'उत्तर' कर दिया है। ऐसा शायद उन्होंने इसीलिए किया है कि कृष्ण के समय में 'लकीर' और 'जवाब' जैसे शब्द हमारी भाषा में नहीं थे।

इस तरह प्रस्तुत उपन्यास भी भाषिक संरचना की दृष्टि से समृद्ध और सम्पन्न कहा जा सकता है।

(04) चमत्कारिक एवं आध्यात्मिक अनुभवों से युक्त उपन्यास

बंधक आत्माएँ

'बंधक आत्माएँ' डॉ. भगवतीशरण मिश्र का एक अद्भूत उपन्यास है। अद्भुत वह इस अर्थ में है कि लेखक ने ओमकाली बाबा नामक एक सिद्ध योगी के साथ की अलौकिक एवं विस्मयकारी घटनाओं का वर्णन किया है। जहाँ तक उपन्यास का सम्बन्ध है उसे एक यथार्थधर्मी विधा कहा गया है जिसका अलौकिक या विस्मयकारी चमत्कारपूर्ण घटनाओं से कोई लेना-देना नहीं है। किन्तु प्रस्तुत उपन्यास ऐसी विस्मयकारी चमत्कारपूर्ण घटनाओं पर ही आधारित है। उपन्यास के क्लेप पर दिया गया है - "क्या आप देवी-देवताओं में आस्था रखते है? क्या आपने भूत-प्रेत एवं अन्य अशरीरी आत्माओं को शरीर धारण कर भोजन करते देखा है? क्या आपने अपने बंद पूजा-कक्ष में किसी आत्मा को शरीर धारण करते और फिर गायब होते पाया है? क्या आपने लगातार कई अशरीरी लोगों द्वारा लाए गए नदी के जल से स्नान किया है?"[191]

प्रस्तुत उपन्यास ऐसी अनेकों अजीबो-गरीब घटनाओं से अटा पड़ा है। इस अर्थ में वह प्रेमचन्द-पूर्वकाल के तिलस्मी उपन्यासों से कम नहीं लगता है। परन्तु वह उन पुराने तिलस्मी उपन्यासों से अलग इन अर्थो में पड़ता है कि वे उपन्यास जहाँ पूर्णतया एक वायवी सृष्टि का निर्माण करते हैं वहाँ प्रस्तुत उपन्यास में उसे साम्प्रतिक यथार्थ से जोड़ने का, उसका वैज्ञानिक अर्थघटन करने का प्रयास भी मिलता है। लेखक के दावे के अनुसार इसमें निरूपित तमाम-तमाम घटनाएँ वास्तविक घटनाओं पर आधारित है। उपन्यास में निरूपित ओमकाली बाबा के प्रारंभिक जीवन से जुड़ी हुई कुछेक घटनाओं के अतिरिक्त, उपन्यास में वर्णित अधिकांश घटनाएँ लेखकीय आँखों के

सामने घटित हुई है। उपन्यास में भारत सरकार के अनेक उच्च अधिकारियों तथा समाज में प्रतिष्ठित व्यक्तियों के साक्ष्य हैं। उसमें ओमकाली बाबा का स्थानीय पता तक दिया गया है। कोई चाहे तो उपन्यास में वर्णित अद्‌भुत, आश्चर्यजनक असंभव-सी प्रतीत होनेवाली बातों का परीक्षण भी कर सकता है। अतः उपन्यास को पढ़ते हुए अंग्रेजी की वह उक्ति सार्थक होती है- 'Sometimes Facts are Stranger than fiction.' अतः यह उपन्यास में हिन्दी के औपन्यासिक आलोचकों के सामने भी एक प्रश्नचिह्न खड़ा करता है। उपन्यास विषयक, उसकी यर्थाथ विषयक विभावना पर, पुनः एक बार सोचने को विवश करता है। बहुत-सी प्राचीन विद्याओं को, जिनमें तंत्रविद्या भी एक है, लोग पहले कपोल कल्पित ही मानते थे किन्तु अब पश्चिम के वैज्ञानिक भी इस विषय पर शोध अनुसंधान कर रहे हैं, और कहीं-कहीं उनकी सत्यता पर भी विश्वास कर रहे हैं।

उपन्यास का प्रारम्भ तब से होता है जब लेखक डॉ. भगवतीशरण मिश्र बिहार के मुझफ्फपुर में एक सरकारी अधिकारी के रूप में आते हैं। मुझफ्फपुर पालिका के एक स्कूल के प्रधान अध्यापक अक्षयवट मिश्र डॉ. मिश्र का परिचय ओमकाली बाबा से करवाते हैं। ओमकाली बाबा के साथ की प्रथम भेंट में ही लेखक चमत्कृत हो जाते हैं। जब उनके सामने खाली थालियाँ लड्डुओं और सुपारियों से भर जाती हैं।[192] उसके बाद तो ओमकाली बाबा से मिलने का एक सिलसिला सा बन जाता है और जब भी डॉ. मिश्र बाबा से मिलते है कोई-न-कोई चमत्कारपूर्ण घटना घटित होती है। कुछ दिन के बाद तो बाबा लेखक के साथ ही रहने आ जाते हैं। एक बार लेखक के कहने पर वे उनतीस तोले की पायल मंगवा देते हैं।[193] एक बार बाबा सिनेमा हॉल से लौटते समय अचानक अदृश्य हो जाते हैं। बहुत आग्रह करने पर वे लेखक को बताते हैं कि उन्होंने जिन इष्टों को साध रखा है इनमें एक नट भी है जो अपने कन्धों पर बिठाकर उनको अदृश्य कर देता है। यें सूक्ष्म अशरीरी आत्माओं की गति मन की गति के समान होती है और बाबा यहाँ यह भी बताते हैं कि सूक्ष्म शरीर वाले के साथ लगते ही हर चीज अदृश्य हो जाती है फिर वह आदमी हो, फल हो या मिठाई।[194]

प्रस्तुत उपन्यास में ऐसी तो अनेकों चमत्कारपूर्ण घटनाओं का वर्णन मिलता है। जैसे-लोगों के अनुरोध पर विविध ब्रांड की चीज-वस्तुओं को तत्काल मंगवा देना, बाबा के कुटिया प्रवेश पर सम्पन्न धार्मिक अनुष्ठान में एक छोटी-सी बाल्टी के दूध के प्रसाद का अनेक परिवारों में बाँटा जाना, बाबा के एक इष्ट रामनाथ ब्रह्म की कहानी, श्री लक्ष्मणप्रसाद अम्ब के यहाँ चमत्कार प्रदर्शन, लेखक के यहाॅ होने वाले

संकीर्तन में नाग होने से दरवाजे का न खूलना, पी.सी. सरकार के जादू की चर्चा, कादम्बिनी के फाइल का दादा के इष्टों द्वारा पढ़ा जाना, देवरहा के बाबा तथा डॉ. हरवंशलाल शर्मा का उल्लेख, चैन परी और चन्दूल परी की परलोक यात्रा, इष्टों के साथ होली खेलने की बात, बाबा के इष्टों का भोज, लेखक द्वारा भोज समारम्भ तथा उसमें चैनपरी के पैरों का दिखना, श्री शरण के यहाँ इष्टों का दो-दो बार भोज, लेखक को सिद्धि की दीक्षा देने के सम्बन्ध में इष्टों की बैठक तथा बाबा की विदेश यात्रा।[195]

इस उपन्यास में ओमकाली बाबा के पूर्व जीवन की कथा भी आती है। बाबा अपने पूर्व जीवन में क्षत्रिय थे और उनका नाम अग्निसिंह था। बिहार राज्य के सिवान जिले के गंगपुर-सिसवन गाँव में एक राजपूत परिवार में उनका जन्म हुआ था। पाँच वर्ष की अवस्था में एक मास्तर के मुँह पर स्लेट मारकर वे भाग निकले थे। रेलवे स्टेशन पर उनकी भेंट एक साधु बाबा से होती हैं। बाबा बिना टिकट यात्रा कर रहे थे। टी.टी. ने उनको स्टेशन पर उतार दिया था परन्तु तभी एक चमत्कार होता है। गाड़ी आगे चलने का नाम ही नहीं लेती। बहुत अनुनय-विनय करके साधु बाबा को गाड़ी में बिठाया जाता है तब गाड़ी चलने लगती है। इस चमत्कार से प्रभावित होकर अग्निसिंह बाबा के पैर पकड़ लेता है और उनके साथ चलने की जिद करता है। बाबा उसे हर तरह से समझाते है परन्तु अग्निसिंह टस से मस नहीं होता। इस पर बाबा उसे अपना चेला बना लेते हैं, किन्तु एक शर्त रखते हैं कि वे जब तक उसे जाने को न कहे, उनको छोड़कर भागेगा नहीं। अग्निसिंह बाबा की शर्त को मान लेता है और पलामू के घोर जंगलों में बाबा के साथ जिंदगी के इक्कीस बहुमूल्य वर्ष बिता देता है। वहाँ पर अग्निसिंह को बाबा की अनेक सिद्धियों का पता चलता है। बाबा की सेवा में इन्द्रलोक की परियाँ उपस्थित होती थी और वे बाबा के कहने पर उनके शिष्य के लिए दूध, फल, मेवा-मिष्टान आदि सभी खाद्य पदार्थ निमिष मात्र में उपस्थित कर देती थी। बाबा और इन परियों के सहारे अग्निसिंह के इक्कीस वर्ष घोर जंगल में कट जाते हैं। इक्कीस वर्ष के बाद बाबा एक दिन बाबा अग्निसिंह उर्फ ओमकाली बाबा को दीक्षान्त शिक्षा देते हुए दो बातें कहते हैं - एक तो यह कि गुरु आज्ञा हमेशा शिरोधार्य होनी चाहिए और दूसरी, आदमी का मांस कभी नहीं खाना चाहिए क्योंकि उसके खाने से आदमी पागल हो जाता है।[196]

उसके बाद वे अग्नि को गृहस्थाश्रम में लौट जाने की आज्ञा देते हैं। वह पहले तो मना करते है किन्तु बाद में गुरु आज्ञा मानकर उसे शिरोधार्य करते हैं। बाबा कहते है - ''गृहस्थाश्रम तुझे पुकार रहा है मैं वर्णाश्रम धर्म का अतिक्रमण नहीं कर

सकता। आज पच्चीस वर्ष तुम्हारे पूरे हो गए। ब्रह्मचर्याश्रम समाप्त । घर जाकर विवाह रचाओ। पुत्र पैदा करो। पितर प्रसन्न होंगे।''[197]

उस दिन बाद गुरु दक्षिणा के रूप में अग्निसिंह की परीक्षा भी ले डालते हैं। बाबा अपने चमत्कार से एक चार-पाँच वर्ष के अत्यन्त सुन्दर, कोमल और गोरांग बालक को प्रकट करते हैं फिर तलवार से उसकी तलहथी काटकर अग्निसिंह को कहते है कि इसे ग्रहण करो यह मेरा प्रसाद है। अग्निसिंह पशोपश में पड़ जाता है, क्योंकि थोड़े समय पहले ही गुरु बता चुके थे कि आदमी का मांस कभी नहीं खाना चाहिए क्योंकि उससे आदमी पागल हो जाता है परन्तु दूसरे ही क्षण उसे बाबा की पहली बात का स्मरण हो आता है कि गुरु आज्ञा सर्वोपरि होती है। अतः अग्निसिंह अपने आजीवन पागल हो जाने की संभावना को दर-किनार करते हुए झट से गुरु के हाथ से मांस के लोथड़े को उठाकर अपने मुँह में रखने जा ही रहा था कि उसे सोंधी-सोंधी गंध आने लगती है। वस्तुतः मांस गर्म-गर्म हलवे में परिवर्तित हो चुका था। इस प्रकार गुरु द्वारा ली गई इस परीक्षा में अग्निसिंह उत्तीर्ण हो जाता है।

तब बाबा उसे दीक्षान्त शिक्षा देते हैं। यह शिक्षा अत्यन्त ही मननीय है यथा - ''तुम जगत में लौटे। तुम्हारे लायक जो कुछ था मैंने दे दिया। उससे अधिक जो कुछ मेरे पास है तुम्हें दे नहीं सकता। वह तुम अपनी स्वयं की साधना से प्राप्त करोगे। तब तक तुम्हें संसार में कोई कष्ट नहीं होगा। रिद्धि-सिद्धयाँ तुम्हारी चेरी रहेंगी । पर यही उलझ नहीं जाना। ये मार्ग की सहायिका है, पाथेय। इन्हें लक्ष्य नहीं मान लेना। नहीं, जहाँ पहुँचे हो वही रह जाओगे। नहीं नहीं, उससे भी नीचे चले जाओगे। जीवन साधना है। साधना गति है। रूकना नहीं अग्नि। बढ़ते जाना। नाम का बड़ा गुण है। मैंने तुझे सब कुछ बता दिया है। भगवन्नाम नहीं छोड़ना। जप और संकीर्तन में लगे रहना। सारी सिद्धियाँ नाम की डोर में बंधी है। यह डोर ढीली हुई कि सिद्धियाँ स्वतंत्र हुई। फिर उन पर तुम्हारा कोई वश नहीं होगा। मृग-मरीचिका बनकर रह जाएँगी वह। सीढ़ियाँ मानो इन सिद्धियों को। इन पर आरोहण कर प्राप्त कर लो उस दुर्लभ को जो हम योगियों, साधकों का लक्ष्य है - उस परमानन्द को परब्रह्म को। समझ गए अग्नि?........ समझ गए तो ठीक, नहीं तो इक्कीस वर्षों की अरण्य साधना अरण्य-रोदन ही सिद्ध होगी। मत करना अक्सर प्रयोग इन सिद्धियों का। दिखावे के लिए तो और भी नहीं। मान-मर्यादा के लिए भी नहीं। मान अहंकार का मूल है। साधना-पथ का महान विघ्न। इसीलिए तो मैं इस घोर जंगल में रहकर संसार से दूर रहता हूँ। नहीं भेजता मैं तुम्हें संसार में पर मेरी विवशता है। पर कहूँगा ध्यान रखना। संसार पकड़ नहीं ले तुझे। गृहस्थाश्रम पूरा कर, फिर लौट आना

इससाधना-स्थली को। मैं रहूँ, न रहूँ, यह स्थान तुम्हारी प्रतीक्षा करेगा।''[198]

इन प्रकार यह उपन्यास जहाँ पूर्व प्रेमचन्दकालीन तिलस्मी-चमत्कारपूर्ण उपन्यासों से सम्बद्ध है वहाँ दूसरी तरफ वह उनसे अलग भी पड़ता है। क्योंकि अपनी व्याख्या और अर्थघटन में लेखक भौतिक विज्ञान तक का सहारा लेते हैं। यह तर्क भी प्रस्तुत करते है कि सांप्रत काल की बहुत-सी वैज्ञानिक उपलब्धियाँ आज से पचास-सौ साल पहले चमत्कारपूर्ण ही लगती, ठीक वैसे ही जैसे आज की बहुत-सी चमत्कार पूर्ण घटनाएँ आज से कुछ साल बाद ठोस वैज्ञानिक वास्तविकता का रूप ले सकती है। इसमें लेखक का अपना वृत्तान्त भी है,अतः उसे आत्मवृत्तान्तपरक उपन्यास भी कह सकते हैं। इस प्रकार डॉ. मिश्र में परम्परागत उपन्यास का एक विलोमी प्रकल्प मिलता है।

जहाँ तक प्रस्तुत उपन्यास की भाषिक संरचना का प्रश्न है इसमें लेखक ने साधारण बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। अन्य उपन्यासों की तरह भाषा की दृष्टि से यह अधिक बोझिल नहीं है। इसमें संस्कृत, अंग्रेजी, अरबी, फारसी तथा भोजपुरी भाषा के शब्द उपलब्ध होते हैं।

जैसा कि ऊपर बताया है प्रस्तुत उपन्यास में अधिकांशतः बोलचाल की भाषा प्रत्युक्त हुई है। तथापि लेखक की जो प्रकृति है, संस्कृत बहुला भाषा लिखने की उसके कारण संस्कृत शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक कहा जाएगा। ऐसे शब्दों में लिपिबद्ध, आम्र-वृक्ष, किंचित् क्षीण, आच्छादित, भगवन्नाम, सम्पुटित, पंचगव्य, क्षेत्रपाल, अन्यमनस्क, नन्दन कानन, पुरुष प्रवर, तपःपूत आदि उल्लेखनीय कहे जा सकते हैं।[199]

प्रस्तुत उपन्यास समसामयिक है। लेखक स्वयं एक आई.ए.एस. ऑफिसर है। अतः उनमें अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। यथा-एडिशनल जज, एकाउंटेन्ट, हेल्थ ऑफिसर, सुपरिंटेंडेन्ट, वाटर-वर्क्स, सिविल इंजीनियर, ड्राइंग-रूम, मार्निंग शो, इंटर्वल, पोर्टिको, इम्प्रूवमेन्ट, डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट, स्टेनलेस स्टील कैप्सटन सिग्रेट, इंटर्व्यू, फिंगर प्रिंट्स, सर्किट हाउस, इंडस्ट्रियल गैस्ट हाउस, इन लाइटर वेन, एनर्जी, एम.एल.ए., क्लाथ मार्केट, कोटिंग, मैग्जीन-एडिटर, एटम आदि-आदि।[200]

लेखक सरकार के अनेक विभागों में रह चुके हैं। अतः अनेक ऐसे शब्द भी मिलते हैं जिनको हम पारिभाषिक या अनूदित शब्द कह सकते हैं। ऐसे शब्दों में निम्नलिखित शब्द उल्लेखनीय है - नगरपालिका, विशेष अधिकारी, अवक्रमित, विकास पदाधिकारी, आपूर्ति विभाग, जिला मुख्यालय, निर्देशानुसार, स्वास्थ्य-अधिकारी,

सरकारी आवास, अधीक्षक, कार्यान्वित, स्थगित, स्थानांतरित, निर्देशक, शिक्षाविद्, परिशिष्टांक, संपादकीय कार्यालय, स्वागत-प्रबन्ध, दीक्षान्त भाषण, नगर-शिक्षक-संघ आदि-आदि।[201]

प्रस्तुत उपन्यास के ओमकाली बाबा उर्फ अग्निसिंह पूर्वांचल के है, फलतः प्रस्तुत उपन्यास की भाषा में कुछ भोजपुरी-अवधि शब्दों और वाक्यों का प्रयोग हुआ है। जिनमें निम्नलिखित उल्लेखनीय कहे जा सकते हैं- ई लोग, हम आपन का परिचय दीहीं, ना चलब? त हम जाई, ठीक बा, भूख लागल रहे, ई का कौनो तमाशा है, ठीक बा, दोसर आ जाई, बोल तब का चाहिं, साड़ी भी आ जाई, अभी भी आ सकला, ल साड़ी आ गइल आदि-आदि ।[202]

अरबी-फ़ारसी के कई शब्द आधुनिक भाषा में समाविष्ट हो गए है अतः ऐसे शब्दों के प्रयोग को भी स्वाभाविक ही कहा जाएगा। यहाँ ऐसे कुछ शब्दों का उल्लेख किया जा रहा है - गुमराह, लुंगी, गनीमत, हम-उम्र, एतराज, परहेज, माजरा, किस्म, तमाशा, परवाह, मदहोश, पानीदार कारामात, औरत, सिलसिलेवार, मसनद, मंजिल, अनजान आदि-आदि।[203] अन्य उपन्यासों की तरह यहाँ भी मिश्रजी की भाषा में कहावतबयानी और मुहावरेदानी मिलती है। कुछ कहावतों का उल्लेख हम कर रहे हैं - दिन भर का भूला शाम को घर आ गया है, अब लौं नसानी अब ना नसैहों, जंगल में मंगल, गुड़ पर चीटियाँ आती ही हैं आदि-आदि।[204] यहाँ पर प्रथम कहावत का प्रयोग लेखक ने कुछ दूसरे ढंग से किया है। मूल कहावत है - 'सुबह का भूला शाम को घर आ जाए तो भूला नंही कहलाता' दूसरी कहावत अवधि भाषा की है।

कहावत की तरह मुहावरों का भी भरपूर प्रयोग हुआ है। कुछेक का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है। मिट्टी पलीद करना, हाथ की सफाई, हथियार डाल देना, पांव पलोटना, बे सिर-पैर की हांकना, अरण्य-रोदन सिद्ध होना, घर कर जाना, पल्ले नहीं पड़ना, पाराग गर्म हो जाना, आव न देखना न ताव, शब्दों पर रंग-रोगान चढ़ाना, गुस्सा नाक पर रहना, घुटने टेक देना,बाल की खाल निकालना, दूध-दही की नदियाँ बहना, बायें हाथ का खेल होना, धत्ता बताना, मखौल उड़ाना, बिना मोल का गुलाम होना आदि-आदि।[205]

अन्य उपन्यासों की तरह यहाँ भी नए रूपक और विशेषणों का प्रयोग मिलता है। रूपकों में निम्नलिखित उल्लेखनीय है - नाम की डोर, सौंदर्य-सागर, मन का आइना, भगवद्दर्शन रूपी मंजिल, मोह-फास, कल्पना की उड़ान आदि-आदि।[206]

इसी तरह कुछ शब्दों का विशेषण के रूप में प्रयोग हुआ है। ऐसे शब्दों में निम्नलिखित उल्लेखनीय है - अशरीरी अस्तित्व, मानसिक उधेड़बुन, गम्भीर चेहरे, गैरिक अधोवस्त्र, भीगी आँखें, सम्भ्रांत इलाका, भीनी महक, लम्बे-लम्बे इकहरे पुरुष, मदहोश पानीदार आँखे, बूढ़ी आँखें, मौलिक विकृतियाँ, सांगोपांग अध्ययन, अतुलनीय अतिथि, तपःपूत ऋषि, उत्सुक नजरें, गोपनीय संचिकाएँ आदि-आदि।[207]

इनके अतिरिक्त संस्कृत, अवधि, अंग्रेजी आदि उद्धरण तथा सूक्तियाँ भी उपन्यास में उपलब्ध होती है जिनका उल्लेख हम परवर्ती अध्याय में यथेष्ट स्थान पर करेंगे।

निष्कर्ष

द्वितीय अध्याय के समग्र आकलन के उपरांत हम सहजतया निम्नलिखित निष्कर्ष तक पहुँच सकते हैं:-

(01) उपन्यास गद्य की विधा है और उपन्यास की कथावस्तु उसके गद्य की प्रकृति को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका करती है।

(02) कथावस्तु की दृष्टि से डॉ. भगवतीशरण मिश्र में हमें उपन्यासों की चार कोटियाँ प्राप्त होती है - (क) सामाजिक उपन्यास (ख) ऐतिहासिक उपन्यास (ग) पौराणिक-सांस्कृतिक उपन्यास और (ध) चमत्कारिक एवं आध्यात्मिक अनुभवों से युक्त उपन्यास।

(03) सामाजिक उपन्यासों में प्रायः समसामयिक जीवंत भाषा का प्रयोग होता है। उपन्यास की कथावस्तु जिस प्रकार के समाज पर आधारित होगी उस समाज में प्रयुक्त भाषा का प्रयोग होगा। उसमें लेखकीय भाषा का भी अवदान रहेगा। जहाँ तक डॉ. मिश्र की भाषा का सवाल है, उनमें संस्कृत तत्सम शब्दावली बहुल भाषा पाई जाती है।

(04) ऐतिहासिक कथावस्तु पर आधारित उपन्यासों में भाषा का प्रयोग यथासम्भव उस ऐतिहासिक देश-काल के परिप्रेक्ष्य में होता है।

(05) पौराणिक - सांस्कृतिक प्रकार के उपन्यासों में संस्कृत तत्सम शब्दावली युक्त भाषा का प्रयोग स्वाभाविक समझा जाता है। लेखक की स्वयं की भाषा अधिक संस्कृतनिष्ठ है फलतः ऐसे उपन्यासों में संस्कृत तत्सम शब्दावली का प्रयोग चरमसीमा को स्पर्श करता हुआ प्रतीत होता है। लेखक का मन भी शायद ऐसी भाषा के प्रयोग में अधिक रमता है।

(06) चमत्कारिक एवं आध्यात्मिक अनुभवों से युक्त उपन्यास में सम-सामयिक भाषा के अतिरिकित तंत्र-मन्त्र योग-साधना तथा अध्यात्म से जुड़ी हुई शब्दावली पाई जाती है।

(07) डॉ. मिश्र के सभी प्रकार के उपन्यासों की भाषा पर विहंगम दृष्टिपात करने से इतना तो असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि उन्होंने कथावस्तु के अनुरूप भाषा का प्रयोग किया है।

(08) डॉ. मिश्र के उपन्यासों में कथावस्तु के अनुरूप देशज, संस्कृत, तत्सम शब्द, अरबी-फारसी या उर्दू के शब्द, अंग्रेजी के शब्द और भोजपुरी और अवधि के शब्द पाए जाते हैं।

(09) मिश्र जी की भाषा अलंकृत है। फलतः उसमें नए विशेषण, नए उपमान, नए रूपक, नवीन क्रियारूप आदि के प्रयोग भी सहजतया उपलब्ध होते हैं।

(10) डॉ. मिश्र की भाषा में कहावतों और लोकोक्तियों का प्रयोग भी पुष्कल परिमाण में उपलब्ध होता है। कहीं-कहीं उन्होंने प्रचलित कहावत या लोकोक्ति को कुछ तोड़-मरोड़कर नए ढंग से उसका प्रयोग करने का प्रयत्न भी किया है। भाषागत लालित्य की दृष्टि से यह अनिवार्य भी है।

(11) मुहावरेदानी डॉ. मिश्र की भाषाशैली की विशेषता है। अन्य विषयों में प्रसाद शैली अनपनाने वाले डॉ. मिश्र यहाँ मुहावरों के सन्दर्भ में प्रेमचन्द का अनुसरण करते हुए प्रतीत होते हैं। कहावतों की तरह मुहावरों में भी नए प्रयोग करने में चुके नहीं है।

(12) काव्य के हेतुओं में एक हेतु व्यत्पत्ति को भी माना गया है। 'व्युत्पत्ति' का अर्थ विविध विषयों तथा शास्त्रों का अध्ययन ऐसा होता है। डॉ. मिश्र जी के उपन्यासों में जो अनेक सूक्तियाँ और उद्धरण पाए जाते हैं उनसे उनकी बहुज्ञता तथा बहुपठितता प्रमाणित होती है।

(13) व्यत्पत्तिशास्त्र (Etymology) की दृष्टि से भी डॉ. मिश्र जी के उपन्यासों की भाषा रसप्रद सिद्ध होती है क्योंकि आज के बहुत से शब्द संस्कृत के कौन से मूल शब्द से व्युत्पन्न हुए उसका ज्ञान भी हमें उनके उपन्यासों से होता है।

******

सन्दर्भानुक्रम

1. Joyas cary : Writers at work : First series (1958) : P 60
2. भगवतीशरण मिश्र का उपन्यास साहित्य : डॉ. इला मिस्त्री : शोध-प्रबन्ध : म.स. विश्वविद्यालय बड़ौदा : पृ. 156
3. संस्कृति के चार अध्याय : डॉ. रामधारी सिंह 'दिनकर' : पृ. 99-100
4. भगवतीशरण मिश्र का उपन्यास साहित्य : डॉ. इला मिस्त्री : शोध-प्रबन्ध : म.स. विश्वविद्यालय बड़ौदा : पृ. 148
5. नदी नहीं मुड़ती : पृ. 07
6. दृष्टव्य : वही : पृ.: 36
7. दृष्टव्य : वही : पृ. 100-101
8. वही : पृ. 184-185
9. दृष्टव्य : सूरज के आने तक : पृ. 166
10. भगवतीशरण मिश्र का उपन्यास साहित्य : शोध-प्रबन्ध : पृ. 92
11. सूरज के आने तक : डॉ. भगवतीशरण मिश्र : पृ. 10, 87, 8, 9, 28, 9, 18, 26, 21, 21, 33, 46, 43, 50, 61, 67, 70, 79, 97, 162, 90, 103, 103, 103, 102, 109, 129, 131, 133, 128, 134, 134, 144, 162, 162, 163, 162।
12. वही : पृ.सं. क्रमश : 146, 163, 15, 19, 101, 44, 163, 75, 98, 98, 98, 103, 104, 104, 120, 128, 128, 130, 134, 141
13. सूरज के आने तक : पृ.सं. क्रमश : 30, 31, 31, 44, 132, 157, 115, 108, 71, 86, 97, 118, 110, 121, 112, 106
14. वही : पृ.सं. क्रमश : 8, 8, 13, 17, 45
15. वही : पृ.सं. क्रमश : 6, 6, 7, 9, 19, 28, 41, 152, 158, 82, 101
16. भारतीय मिथक कोश : डॉ. उषापुरी विद्यावाचस्पति : पृ. 24
17. दृष्टव्य : एक और अहल्या : पृ.सं. क्रमश : 78, 97, 121
18. वही : पृ.सं. क्रमश : 44, 181
19. वही : पृ.सं. क्रमश : 9, 42, 42, 45, 107, 126, 161, 179, 240
20. वही : पृ.सं. क्रमश : 8, 9, 11, 44, 196

21. वही : पृ.सं. क्रमश : 44, 45, 130
22. वही : पृ.सं. क्रमश : 11, 34, 44, 94, 57, 84, 227
23. मानसमाला : डॉ. पारुकांत देसाई : पृ. 16
24. डॉ. पारुकांत देसाई की गज़ल का एक शेर : रैन बसेरा : अक्तूबर 1994
25. लक्ष्मण-रेखा : डॉ. भगवतीशरण मिश्र : पृ. 168
26. वही : पृ. 207
27. भागीरथी : (पत्रिका) : पृ. 47
28. लक्ष्मण-रेखा : पृ.सं. क्रमश : 59, 80, 104, 117, 127, 188
29. वही : पृ.सं. क्रमश : 14, 16, 17, 18, 116, 122, 198
30. वही : पृ.सं. क्रमश : 14, 15, 19, 22, 24, 29, 36, 50, 143, 143, 185
31. वही : पृ. 147
32. वही : पृ. 156
33. चारुचन्द्रलेख : आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : पृ. 137
34. साहित्य : रवीन्द्रनाथ ठाकुर : पृ. 124-125
35. War and peace : Tolstoy from appendix
36. लेख : पत्रिका - सरगम : 9 मार्च 1951 : 'उपन्यासकार वृन्दवनलाल वर्मा' से
37. हिन्दी उपन्यास : लेख-ऐतिहासिक उपन्यास : डॉ. शशीभूषण सिंहल ऋ पृ. 68-69
38. पहला सूरज : भूमिका से
39. दृष्टव्य : भगवतीशरण मिश्र का उपन्यास साहित्य : शोध-प्रबन्ध : डॉ. इला मिस्त्री : पृ. 128
40. वही : पृ. 128
41. India's quest : Pandit Jawaharlal Nehru : pp. 171-172
42. साकेत : मैथीलीशरण गुप्त : प्रारंभिक पंक्तियाँ
43. दृष्टव्य : भगवतीशरण मिश्र का उपन्यास साहित्य : शोध-प्रबन्ध : डॉ. इला मिस्त्री : पृ. 130
44. दृष्टव्य : पहला सूरज : पृ. 170

45. वही : पृ. 220
46. भगवतीशरण मिश्र का उपन्यास साहित्य : शोध-प्रबंध : डॉ. इला मिस्त्री : पृ. 134
47. पहला सूरज : पृ. 351
48. वही : पृ. 350
49. भगवतीशरण मिश्र का उपन्यास साहित्य : पृ. 135
50. पहला सूरज : पृ. सं. क्रमश : 7, 9, 11, 12, 12, 37, 53, 95, 140, 319, 319।
51. वही : पृ. सं. क्रमश : 11, 12, 39, 42, 103, 150, 162, 174, 189, 290, 294, 317
52. वही : पृ. सं. क्रमश : 6, 26, 29, 31, 62, 63, 64, 64, 64, 65, 105, 350, 106, 109
53. वही : पृ. सं. क्रमश : 24, 177, 197, 289, 303
54. वही : पृ. सं. क्रमश : 41, 42, 85, 148, 155, 230, 258, 338
55. वही : पृ. सं. क्रमश : 12, 20, 38, 184, 198, 291
56. वही : पृ. सं. क्रमश : 138, 221, 270
57. पीताम्बरा : डॉ. भगवतीशरण मिश्र : पृ. 38
58. वही : भूमिका : पृ. 8
59. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : पृ. 178
60. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेन्द्र : पृ. 255
61. दृष्टव्य : क्रमश : हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. शिवलोचन पांडेय : पृ. 80;
    हिन्दी साहित्य कोश : भाग-2 : पृ. 422;
    हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास : प्रथम खण्ड : पृ. 280;
    हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त सुगम इतिहास : डॉ. पारुकांत देसाई : पृ. 35
62. पीताम्बरा : भूमिका : पृ. 12
63. दृष्टव्या : डॉ. मिश्र के कथन के लिए पीताम्बरा : पृ. 287 तथा तुकाराम की जन्म-तिथि के लिए : भारतीय साहित्य कोश : संपादक डॉ. नगेन्द्र : पृ. 501
64. पीताम्बरा : भूमिका : पृ. 12
65. दृष्टव्या : वही : पृ. 119

66. वही : पृ. 70

67. वही : पृ. सं. क्रमश : 21, 22, 141, 291, 301, 549, 107, 134, 305, 369, 399

68. वही : पृ. सं. क्रमश : 280, 322, 293, 298, 354, 351, 357, 427, 606, 409, 610

69. वही : पृ. सं. क्रमश : 56, 58, 133, 184, 269, 315, 386, 421, 469, 570, 605

70. वही : पृ. सं. क्रमश : 55, 80, 84, 85, 135, 279, 339, 485

71. वही : पृ. सं. क्रमश : 54, 59, 135, 168

72 वही : पृ. सं. क्रमश : 54, 59, 135, 168

73. वही : पृ. सं. क्रमश : 34, 42, 71, 100, 124, 232, 307, 589

74. वही : पृ. सं. क्रमश : 46, 178, 494

75. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : पृ. 77

76. उपन्यास के फ्लैप पर दिया गया प्रकाशकीय वक्तव्य

77. उपन्यास के दूसरे फ्लैप पर लेखक द्वारा रेखांकित किया गया गद्यांश

78. हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त सुगम इतिहास : डॉ. पारुकांत देसाई : पृ. 20

79. चिन्तनिका : डॉ. पारुकांत देसाई : पृ. 9-16

80. देख कबीरा रोया : पृ. 11-12

81. वही : पृ. 15

82. वही : पृ. 391

83. दृष्टव्य : वही : पृ. 390

84. दृष्टव्य : देख कबीरा रोया : पृ. सं. क्रमश : 15, 51, 61, 64, 91, 98, 189, 194, 262, 339, 339, 390

85. दृष्टव्य : वही : पृ. 11-90

86. दृष्टव्य : वही : पृ. 90-170

87. दृष्टव्य : वही : पृ. 170-284

88. दृष्टव्य : वही : पृ. 284-338

89. दृष्टव्य : वही : पृ. 338-392

90. वही : पृ. 391-392

91. वही : पृ. सं. क्रमश : 12, 13, 40, 105, 116, 187, 197, 252, 284, 298, 298, 123

92. वही : पृ. सं. क्रमश : 32, 43, 91, 175, 304

93. वही : पृ. सं. क्रमश : 155, 47, 142, 319

94. वही : पृ. सं. क्रमश : 11, 11, 14, 14, 39, 57, 68, 87, 143, 121, 183, 209, 277, 277, 280, 282, 286, 290, 299, 372, 369, 305

95. वही पृ. सं. क्रमश : 14,16,19,31,41,147,49,276

96. वही : पृ. सं. क्रमश : 11, 14, 11, 19, 25, 26, 38, 36, 38, 45, 72, 75, 76, 68, 68, 159, 96, 99, 197, 167, 192, 202, 236, 102, 358

97. वही :पृ. सं. क्रमश : 15, 33, 12, 17, 23, 103, 241, 105, 128, 219, 333, 340, 391, 349, 381

98. वही : पृ. सं. क्रमश : 14, 18, 24, 135, 151, 245, 273, 388, 101, 110, 388

99. भूमिका : आरंभ : का के लागूं पांव : पृ. 6

100. वही : पृ. 7

101. का के लागूं पांव : पृ. सं. क्रमश : 32, 32, 32, 32, 32, 32, 56, 56, 192, 192।

102. वही : पृ. सं. क्रमश : 33, 33, 33, 33, 33, 33, 33, 33, 33, 33, 33, 33, 33

103. वही : पृ. सं. क्रमश : 23, 38, 27, 41, 43, 44, 356, 42, 43, 115, 481, 482, 104

104. वही : पृ. सं. क्रमश : 11, 11, 33, 35, 59, 79, 95, 131, 223, 232, 232, 254, 324, 35, 38, 51, 55, 68, 172, 175, 195, 239, 311

105. वही : पृ. सं. क्रमश : 11, 11, 11, 15, 12, 18, 18, 18, 356, 23, 38, 29, 31, 31, 31, 31, 35, 39, 50, 110, 114, 126, 129, 157, 157, 166, 175, 184, 263, 197, 201, 209, 209

106. वही पृ. सं. क्रमश : 11, 11, 16, 34, 51, 52, 59, 79, 118, 127, 134

107. वही : पृ. सं. क्रमश : 77, 93, 155, 158, 199, 207, 457, 469, 468

108. वही : पृ. सं. क्रमश : 13, 17, 36, 48, 126, 137, 139, 149, 288-289, 350, 355, 364, 181, 169, 59

109. वही : पृ. सं. क्रमश : 35, 44, 45, 79, 108, 128, 140, 170, 171, 218, 260, 307, 307, 389, 416, 460, 472

110. वही : पृ. सं. क्रमश : 19, 71, 75, 110, 195, 266, 384, 390, 447, 256

111. गोबिन्द गाथा : मुखपृष्ठ पर

112. वही: आमुख से

113. वही : आमुख

114. वही : पृ. 9-52

115. वही : पृ. 32-68

116. वही : पृ. 68-101

117. वही : पृ. 101-140

118. वही : आमुख से : पृ.6

119. वही : पृ. 188-225

120. वही : पृ. 188-225

121. वही : पृ. 225-286

122. वही : पृ. 287-328

123. वही : पृ. सं. क्रमश : 10, 10, 15, 27, 51, 65, 84, 96, 115, 264, 311, 59, 29, 189, 236

124. वही : पृ. सं. क्रमश : 30, 42, 142, 154, 181, 181, 185, 187, 187, 187, 187, 198, 198, 198, 203, 278, 309, 299, 322

125. वही : पृ. सं. क्रमश : 64, 67, 137, 138, 141, 144, 144, 148, 155, 161, 164, 165, 258, 268, 282, 299, 294, 316

126. वही : पृ. सं. क्रमश : 9, 10, 10, 9, 19, 46, 37, 51, 59, 74, 84, 106, 106, 107, 107, 175, 242, 251, 287

127. वही : पृ. सं. क्रमश : 9, 9, 26, 35, 44, 74, 160, 200, 273, 298, 40, 159, 162, 164, 201

128. वही : पृ. सं. क्रमश : 62, 66, 128, 146, 191, 240, 285, 271, 28, 281, 283

129. वही : पृ. सं. क्रमश : 17, 19, 34, 39, 41, 53, 66, 102, 124, 132, 139, 141, 154, 161, 201, 230, 255, 272, 274, 282, 310, 315

130. वही : पृ. सं. क्रमश : 67, 74-75, 108, 152, 157, 188, 270

131. शान्तिदूत : डॉ. भगवतीशरण मिश्र : भूमिका से : पृ. 5

132. वही : पृ. 74

133. वही : उपन्यास के दूसरे फ्लैप पर दिया गया प्रकाशकीय वक्तव्य

134. वही : भूमिका : पृ. 5

135. वही : पृ. 7-43

136. वही : पृ. 43-64

137. वही : पृ. 64-94

138. वही : पृ. 94-132

139. वही : पृ. 132-192

140. वही : पृ. 192-196

141. वही : पृ. 187

142. वही : पृ. सं. क्रमश : 13, 14, 16, 17, 33, 87, 92, 136, 134, 177, 184, 186, 186, 170, 105

143. वही : पृ. सं. क्रमश : 28, 49, 49, 117, 133, 133, 136, 143, 165, 19, 53, 145

144. वही : पृ. सं. क्रमश : 27, 30, 31, 39, 39, 44, 46, 51, 69, 123, 123, 123, 134, 176

145. वही : पृ. सं. क्रमश : 14, 25, 25, 35, 42, 83, 124, 134, 148, 154, 164, 186, 191, 193, 33, 8

146. वही : पृ. सं. क्रमश : 11, 24, 24, 25, 28, 41, 76, 78, 102, 109, 136, 159, 164, 186, 191

147. वही : पृ. सं. क्रमश : 16, 19, 27, 37, 52, 62, 63, 64, 67, 89, 106

148. वही : पृ. 40

149. वही : पृ. सं. क्रमश : 17, 52

150. वही : पृ. सं. क्रमश : 7, 9, 11, 18, 19, 24, 25, 27, 28, 36, 41, 47, 51, 63, 73, 83, 100, 104, 116, 127, 133, 136, 139, 153, 154, 170, 179, 191, 191, 193, 193

151. वही : पृ. सं. क्रमश : 12, 18, 21, 29, 48, 48, 67, 70, 71, 73, 74, 88, 120, 149, 164, 176

152. दृष्टव्य : भूमिका : पवनपुत्र : डॉ. भगवतीशरण मिश्र

153. पवनपुत्र : पृ. 11

154. वही : पृ. 12

155. वही : पृ. 306

156. भागीरथी : पत्रिका : पृ. 38

157. पवनपुत्र : पृ. 352

158. वही : पृ. 83

159. वही : पृ. सं. क्रमश : 6, 7, 9, 9, 9, 11, 12, 15, 18, 18, 22, 28, 31, 41, 44, 47, 52, 58, 56, 63, 67, 72, 75, 80, 86, 93, 101, 105, 108,112, 115, 123, 129, 138, 156, 160, 169, 171, 180, 192, 198, 218, 228, 242, 245, 252, 264, 267, 273, 281, 288

160. वही : पृ. सं. क्रमश : 38, 46, 46, 54, 62, 90, 90, 90, 90, 121, 142, 142, 177, 225, 253, 261, 310

161. वही : पृ. सं. क्रमश : 7, 9, 13, 16, 16, 22, 30, 30, 41, 44, 61, 64, 65, 73, 100, 110, 113, 132, 142, 146, 231, 272, 287, 307, 351

162. वही : पृ. सं. क्रमश : 23, 39, 54, 55, 62, 81, 86, 95, 123, 130, 164, 202, 232, 261, 275, 311, 321, 338, 350

163. वही : पृ. सं. क्रमश : 55,58,85,203,272,315,344

164. वही : पृ. सं. क्रमश : 10, 19, 45, 105, 67, 94, 127, 146, 179, 238, 312, 306, 338, 351, 17

165. वही : पृ. सं. क्रमश : 30, 32, 68, 114, 233

166. वही : पृ. सं. क्रमश : 46, 115, 239

167. अंधायुग : पृ. 63

168. कक्षा में उनके मुँह से सुना हुआ दोहा

169. दृष्टव्य : संस्कृति के चार अध्याय : डॉ. रामधारीसिंह 'दिनकर' : पृ. 99-100

170. भगवतीशरण मिश्र का उपन्यास साहित्य : डॉ. इला मिस्त्री : पृ. 157-158

171. प्रथम पुरुष : भूमिका : पृ. 5

172. दृष्टव्य : प्रथम पुरुष : भूमिका : पृ. 5

173. वही : पृ. 6-7

174. वही : पृ. 9

175. संस्कृति के चार अध्याय : पृ. 99

176. प्रथम पुरुष : पृ. 381

177. वही : पृ. 380-381

178. वही : पृ. सं. क्रमश : 7, 10, 13, 14, 15, 15, 15, 15, 16, 18, 19, 20, 25, 27, 33, 44, 63, 68, 91, 141, 170, 221, 253, 257, 298, 308, 344, 363, 366, 382

179. वही : पृ. सं. क्रमश : 10, 13, 17, 36, 61, 62, 98, 110, 205, 209, 222, 266, 295, 298, 378, 41।

180. वही : पृ. सं. क्रमश : 8, 13, 23, 25, 39, 41, 46, 47, 64, 131, 199, 281

181. वही : पृ. सं. क्रमश : 21, 47, 47, 51, 92, 102, 164, 198, 343

182. वही : पृ. सं. क्रमश : 9, 16, 18, 18, 26, 28, 32, 32, 36, 38, 39, 46, 46, 48, 49, 51, 57, 91, 124, 151, 249, 283, 358

183. प्रथम पुरुष : भूमिका : पृ. 11

184. दृष्टव्य : पुरुषोत्तम : उपसंहार

185. वही : पृ. 490

186. वही : पृ. सं. क्रमश : 21, 25, 33, 45, 63, 107, 117, 161, 161, 187, 236, 242, 266, 299, 333, 379, 385, 391, 399, 418,

425, 430, 435, 454, 477

187. वही : पृ. सं. क्रमश : 14, 15, 22, 24, 53, 136, 142, 143, 146, 197, 279, 306
188. वही : पृ. सं. क्रमश : 21, 26, 133, 236, 448, 478
189. वही : पृ. सं. क्रमश : 9, 14, 22, 32, 33, 33, 34, 68, 133, 133, 234, 459।
190. वही :पृ. सं. क्रमश : 8, 19, 38, 59, 66, 78, 192, 193, 212, 330, 415, 456, 468
191. बंधक आत्माएँ : डॉ. भगवतीशरण मिश्र : पुस्तक के फ्लैप से
192. दृष्टव्य : बंधक आत्माएँ : पृ. 13
193. दृष्टव्य : वही : पृ. 25
194. दृष्टव्य : वही : पृ. 25
195. दृष्टव्य : भगवतीशरण मिश्र का उपन्यास साहित्य : डॉ. इला मिस्त्री : पृ. 178
196. बंधक आत्माएँ : पृ. 33
197. वही : पृ. 33
198. वही : पृ. 33-34
199. वही : पृ. सं. क्रमश : 9, 11, 12, 26, 33, 50, 53, 87, 109, 130, 150, 152
200. वही : पृ. सं. क्रमश : 14, 18, 18, 18, 18, 18, 19, 22, 22, 24, 39, 46, 54, 65, 68, 111, 114, 127, 133, 95, 8, 10, 10, 133, 95
201. वही : पृ. सं. क्रमश : 10, 10, 10, 13, 45, 74, 103, 114, 114, 115, 118, 118, 120, 120, 126, 133, 133, 151, 164, 11
202. वही : पृ. सं. क्रमश : 20,20,23,23,24,47,48,64,93,94,97
203. वही : पृ. सं. क्रमश : 9, 12, 16, 22, 40, 51, 57, 58, 63, 81, 84, 84, 90, 96, 102, 117, 126, 159
204. वही : पृ. सं. क्रमश : 156, 160, 160, 163
205. वही : पृ. सं. क्रमश : 10, 13, 22, 27, 32, 34, 38, 61, 63, 81, 84, 96, 100, 132, 151, 156, 162, 65, 158
206. वही : पृ. सं. क्रमश : 33, 84, 147, 159, 162, 7
207. वही : पृ. सं. क्रमश : 8, 12, 19, 26, 33, 45, 82, 83, 84, 84, 86, 143, 149, 152, 70, 38

******